मई 2026

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 90 | अंक - 5 | प्रति - ₹ 25 | ₹ 300 वार्षिक

13 ▶ गुण, कर्म, स्वभाव की प्रज्ञायोग-साधना
26 ▶ स्वस्थ - संतुलित जीवनशैली के स्वर्णिम सूत्र
33 ▶ पर्यावरण-प्रदूषण के मध्य समग्र विकास की राह
51 ▶ कैसी होती है सच्ची भक्ति ?

स्थिरता और स्वस्थता का संदेश

जीवन में आएदिन दुरंगी घटनाएँ घटित होती रहती हैं। आज लाभ है तो कल नुकसान, आज स्वस्थता है तो कल बीमारी, आज सफलता है तो कल असफलता। दिन-रात के चक्र जैसा ही सुख-दुःख का, संपत्ति-विपत्ति का, उन्नति-अवनति का पहिया भी घूमता रहता है। यह हो नहीं सकता कि सदा एक-सी स्थिति रही आवे। जो बना है,वह बिगड़ेगा; जो बिगड़ा है, वह बनेगा। श्वासों के आवागमन का नाम ही जीवन है। साँस चलना बंद हो जाए तो जीवन भी समाप्त हो जाएगा। सदा एक-सी ही स्थिति बनी रहे, परिवर्तन बंद हो जाए तो संसार का खेल ही खतम हो जाएगा। एक के लाभ में दूसरे की हानि और एक की हानि में दूसरे का लाभ। एक शरीर की मृत्यु ही, दूसरे शरीर का जन्म है।

यह मीठे और नमकीन, हानि और लाभ दोनों के ही स्वाद भगवान ने मनुष्य के लिए इसलिए बनाए हैं कि वह दोनों के अंतर और महत्त्व को समझ सके।

(अखण्ड ज्योति, मई — 1951, पृष्ठ - 4)

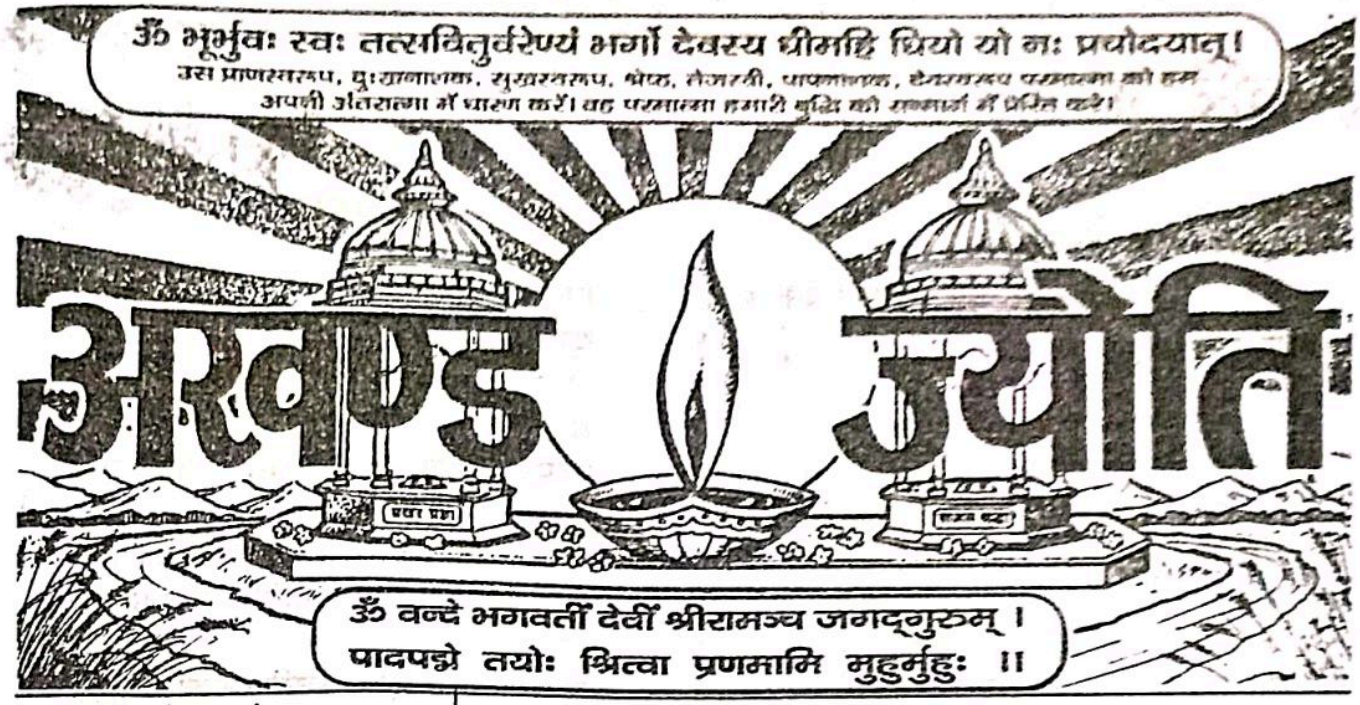

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड
जयसिंहपुरा, मथुरा (281 003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036,
7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
व्हाट्सएप नं. 9927086290 (केवल मेसेज करें)

वर्ष	:	90
अंक	:	05
मई	:	2026
वैशाख-ज्येष्ठ	:	2083
प्रकाशन तिथि	:	01.04.2026

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में सामान्य डाक से	:	6000/-

शक्तिकेंद्र-शक्तिपीठ

शक्तिकेंद्र—शक्तिपीठ के रूप में स्थापित हुए। पुरातन युग में शक्तिपीठ की स्थापना स्वयं शिव ने की थी। उनके द्वारा स्थापित ये सभी शक्तिपीठ शक्ति-साधना का केंद्र बने थे। भारतभूमि की आध्यात्मिक ऊर्जा के ये शक्तिकेंद्र थे। इनकी सुरक्षा-सुव्यवस्था के लिए भगवान शिव ने शिवगण नियुक्त किए थे। ये सभी 'शक्तिपीठ के भैरव' के रूप में प्रशंसित व प्रतिष्ठित हैं। प्राचीन शास्त्रों में शक्तिपीठ की यह कथा इसी रूप में कही गई है।

युगदेवता ने नवयुग के निर्माण के लिए भारत देश की आध्यात्मिक ऊर्जा के नवजागरण के लिए युगशक्ति माता गायत्री के साधनाकेंद्र स्थापित किए। शक्ति-साधना के ये शक्तिकेंद्र—शक्तिपीठ के रूप में प्रतिष्ठित हुए। आरंभ में इनकी संख्या चौबीस थी, जिनकी स्थापना अलग-अलग तीर्थस्थानों पर की गई। बाद में यह संख्या बढ़ी, बढ़ती गई और बढ़ती जा रही है। युगशक्ति गायत्री की प्रतिष्ठा के समस्त विधि-विधान स्वयं उन्होंने अपने हाथों से संपन्न किए। इनकी सुरक्षा-सुव्यवस्था का भार उन्होंने स्थानीय कार्यकर्त्ताओं को दिया। जब पूज्य गुरुदेव वहाँ पहुँचते थे, तब उनके स्वागत के लिए मीलों लंबी लाइन लगती थी। लोग आधी रात से लाइन में खड़े हो जाते। युगशक्ति के अवतरण की सभी को प्रत्यक्ष अनुभूति होती थी। शांतिकुंज से थोड़ी दूर गंगातट पर बना ब्रह्मवर्चस, भारत देश का पहला शक्तिपीठ था। हरिद्वार तीर्थ में इसकी स्थापना व प्रतिष्ठा स्वयं गुरुदेव ने की थी। बाद में तो इसके अनेकों आयाम प्रकट हुए। अभी उनकी शतवर्षीय तप-साधना से न जाने कितने भविष्य में प्रकट होंगे। ❐

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- शक्तिकेंद्र—शक्तिपीठ 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  शिक्षा में जीवनमूल्य और कौशल का समन्वय 5
- सद्बुद्धि प्रदाता गायत्री मंत्र 7
- **पर्व विशेष—बुद्ध पूर्णिमा**
  करुणा के प्रस्फुटन का महापर्व 10
- गुण, कर्म, स्वभाव की प्रज्ञायोग-साधना 13
- ध्रुव का निश्चय अटल व अविचल 17
- पुरुषार्थ चतुष्टय 20
- पवित्र नदियों में स्नान का महत्त्व 24
- स्वस्थ-संतुलित जीवनशैली के स्वर्णिम सूत्र 26
- तनाव प्रबंधन 28
- वीरता देती है गौरव 31
- सफलता के लिए आवश्यक है अनुशासन 32
- पर्यावरण-प्रदूषण के मध्य समग्र विकास की राह 33
- आध्यात्मिक प्रवाह में वैज्ञानिक दृष्टिकोण 36
- ज्ञान की अलख कैसे जगे ? 38
- **हमारा युग निर्माण सत्संकल्प—4**
  संयम का सतत अभ्यास 40
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—206**
  किशोरों में अपराधी मनोवृत्ति पर शोध 46
- **युगगीता—312**
  अतृप्ति, असंतोष और अशुचि—राजसिक कर्मों के हैं लक्षण 49
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  कैसी होती है सच्ची भक्ति ? 51
- **विश्वविद्यालय परिसर से—251**
  अंतरराष्ट्रीय मंच पर प्रतिष्ठित हुआ विश्वविद्यालय 59
- **साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला**
  संयमी-साधु-तपस्वी-ऋषि 61
- **अपनों से अपनी बात**
  नवयुग का शंखनाद 64
- युवा क्रांति का बिगुल बज गया (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

पर्यावरण प्रदूषण के निराकरण के निमित्त समग्र विकास की पहल

मई-जून, 2026 के पर्व-त्योहार

शुक्रवार	01 मई	बुद्ध पूर्णिमा	सोमवार	15 जून	सोमवती अमावस्या
बुधवार	13 मई	अपरा एकादशी	बुधवार	17 जून	महाराणा प्रताप जयंती
शनिवार	16 मई	वट सावित्री व्रत	बुधवार	24 जून	गायत्री जयंती/पूज्य गुरुदेव महाप्रयाण दिवस
बुधवार	27 मई	कमला एकादशी 'वै.'	गुरुवार	25 जून	निर्जला एकादशी
शनिवार	30 मई	पूर्णिमा व्रत	सोमवार	29 जून	संत कबीर जयंती/ पूर्णिमा व्रत
गुरुवार	11 जून	कमला एकादशी			

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

शिक्षा में जीवनमूल्य और कौशल का समन्वय

संयुक्त राष्ट्र संघ ने शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन तक सीमित न मानते हुए इसे व्यक्तित्व-निर्माण और जीवनोपयोगी कौशल से जोड़ने की आवश्यकता पर बल दिया है। आज शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार पाना या परीक्षा पास करना नहीं, बल्कि जीवन को सही दिशा देना और समाज के प्रति उत्तरदायी बनाना भी है।

विश्वभर के अनेक विश्वविद्यालय अब ऐसी शिक्षा-योजनाएँ अपना रहे हैं, जिनमें छात्रों को केवल सैद्धांतिक जानकारी ही नहीं, बल्कि जीवनोपयोगी अनुभव और व्यावहारिक दक्षता भी दी जाती है।

विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में खेल-कूद, कला, संगीत, नाटक, सेवाकार्य और सृजनात्मक गतिविधियों को शिक्षा का अभिन्न हिस्सा बनाया जा रहा है। इसका उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी अपनी अंतर्निहित क्षमताओं को पहचानें और उनका समाजोपयोगी विकास कर सकें।

यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन, हॉर्वर्ड, कैम्ब्रिज और टोक्यो जैसे विश्वविद्यालयों ने लंबे समय से इस दिशा में कार्य किया है। वहाँ शिक्षा का एक बड़ा भाग सामुदायिक सेवा, प्रायोगिक परियोजनाओं और संवादात्मक पद्धतियों पर आधारित है। इसी प्रकार भारत में भी अब यह आवश्यकता महसूस की जा रही है कि हमारी शिक्षापद्धति केवल अंक और डिग्री तक सीमित न रहे, बल्कि विद्यार्थियों के भीतर आत्मविश्वास, सहिष्णुता, नेतृत्व और नैतिकता का भी विकास करे। छात्रों को अवकाश के समय में रचनात्मक कार्यों और समाजोपयोगी परियोजनाओं से जोड़ना अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

इससे न केवल उनके व्यक्तित्व का विकास होगा, बल्कि समाज को भी सकारात्मक दिशा मिलेगी। आज जब देश को जिम्मेदार नागरिकों और सक्षम नेतृत्व की आवश्यकता है, तब शिक्षा में जीवनमूल्यों का समावेश और भी प्रासंगिक हो जाता है। केवल नौकरी पाने के लिए नहीं, बल्कि जीवन को अर्थपूर्ण बनाने के लिए शिक्षा को आत्म विकास और लोक-मंगल से जोड़ना समय की माँग है। आज शिक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़ी चुनौती यह है कि छात्रों का ध्यान केवल परीक्षा और अंक प्राप्ति तक सीमित न रहे।

विद्यालय और महाविद्यालय यदि केवल रोजगार की दृष्टि से शिक्षा देंगे तो विद्यार्थी जीवनोपयोगी ज्ञान और संस्कारों से वंचित रह जाएँगे। इसीलिए आवश्यकता है कि शिक्षा-प्रणाली में ऐसे तत्त्वों का समावेश हो, जो विद्यार्थियों के भीतर उत्तरदायित्वबोध, आत्मनिर्भरता और रचनात्मकता को बढ़ाएँ। सरकारी और निजी संस्थानों में प्रतियोगिता, परीक्षा और पाठ्यक्रम की सीमाओं के कारण अक्सर यही देखा जाता है कि विद्यार्थी दबाव में पढ़ते हैं।

ज्ञान और संस्कारों के बीच संतुलन टूट जाता है। परिणामस्वरूप वे केवल सूचनासंग्रह तक सीमित रह जाते हैं, जबकि सच्चा शिक्षण वही है, जो व्यक्तित्व का निर्माण करे और जीवन की चुनौतियों से जूझने की सामर्थ्य दे। आज के युग में यह विशेष रूप से प्रासंगिक है कि शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित न रहे।

विद्यार्थियों को स्वास्थ्य, समय-प्रबंधन, संवाद कौशल, सामूहिक सहयोग, नेतृत्व और निर्णय क्षमता जैसी जीवनोपयोगी योग्यताओं में प्रशिक्षित करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए संतुलित भोजन, नियमित व्यायाम और मानसिक अनुशासन से जुड़ी शिक्षा उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितनी कि गणित, विज्ञान या साहित्य से।

यह केवल स्वास्थ्य ही नहीं, बल्कि कार्यक्षमता और सकारात्मक सोच को भी सुदृढ़ बनाता है। शिक्षा का लक्ष्य यह होना चाहिए कि विद्यार्थी समाजोपयोगी बनें। यदि वे केवल व्यक्तिगत लाभ तक सीमित रहेंगे तो शिक्षा अधूरी कही जाएगी।

आज समय की माँग है कि विद्यार्थियों को सामूहिक जीवन, सेवा-भावना और सह-अस्तित्व के मूल्यों से परिचित कराया जाए। जब शिक्षा केवल कैरियर का साधन नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला बन जाएगी तभी समाज और राष्ट्र का समग्र विकास संभव होगा।

शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना या परीक्षा पास कराना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों के संपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना है। जब तक शिक्षा शरीर, मन और आत्मा तीनों के विकास से नहीं जुड़ती, तब तक उसका उद्देश्य अधूरा रहता है।

विद्यार्थियों को यह समझाना आवश्यक है कि स्वास्थ्य, समय प्रबंधन और अनुशासन भी शिक्षा के उतने ही महत्त्वपूर्ण अंग हैं, जितना कि पुस्तक ज्ञान। यदि शरीर और मन स्वस्थ होंगे तो ही अध्ययन फलदायी हो सकेगा।

इसी प्रकार श्रम और अनुशासन का अभ्यास करने से वे जीवन की कठिन परिस्थितियों का सामना करने में समर्थ बनेंगे।

ग्रामीण और शहरी, दोनों परिवेश में आज यह आवश्यकता महसूस की जा रही है कि शिक्षा केवल ज्ञान का संग्रह न होकर जीवन जीने की कला बने।

विद्यार्थियों को सामूहिक सेवा, आत्मनिर्भरता और रचनात्मक कार्यों में जोड़ना शिक्षा का अभिन्न हिस्सा होना चाहिए। जब वे समाज के लिए कार्य करेंगे तो उनमें सहयोग, सहानुभूति और नेतृत्व जैसे गुण स्वाभाविक रूप से विकसित होंगे। शिक्षा का प्रसार तभी सार्थक होगा, जब वह समाज की आवश्यकताओं और राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण से जुड़ी हो। केवल नौकरी दिलाने वाली शिक्षा समाज की जड़ों को मजबूत नहीं कर सकती। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षा में विज्ञान और तकनीक के साथ-साथ नैतिकता, संस्कृति और मानवीय मूल्य भी जोड़े जाएँ।

आज भारत जैसे देश में जहाँ की युवा आबादी सबसे बड़ी ताकत है, वहाँ शिक्षा को ऐसा माध्यम बनाना होगा, जो न केवल रोजगार का सृजन करे, बल्कि अच्छे नागरिक भी गढ़े। विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, विवेक और लोक-मंगल की भावना तभी जागेगी, जब शिक्षा उन्हें संपूर्णता में जीना सिखाएगी। ❑

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन॥ *—गीता 6/43*

अर्थात जो पुरुष इस जीवन में साधना करता है व ज्ञान संचय कर लेता है। वह पुनर्जन्म में उन संस्कारों को अनायास ही प्राप्त कर लेता है।

सद्बुद्धि प्रदाता गायत्री मंत्र

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

—यजु. 36.3

यजुर्वेद 36.3 के उपरोक्त मंत्र को गायत्री मंत्र कहते हैं। जिसका भावार्थ है—'उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें।' यदि हम गायत्री मंत्र व उसके भावार्थ पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट होता है कि गायत्री मंत्र में परमात्मा को अंतरात्मा में धारण करने की बात कही गई है, ताकि वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें।

अब प्रश्न यह उठता है कि परमात्मा से बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करने की प्रार्थना क्यों की गई है? परमात्मा से कोई अन्य वस्तु भी माँगी जा सकती थी; जैसे—अथाह धन-संपदा, भौतिक सुख-साधन आदि। पर इस तरह की कोई प्रार्थना, याचना नहीं की गई है? क्यों? क्योंकि यदि हमारे पास अथाह धन-संपदा है और सद्बुद्धि नहीं है तो अपार धन-संपदा के होते हुए भी हम सुखी नहीं रह पाएँगे।

सद्बुद्धि के बजाय यदि हमारे पास दुर्बुद्धि है, कुबुद्धि है तो धन-संपदा, सुख-साधन के होने के बावजूद भी हम दुःखी रहेंगे। साथ ही दुर्बुद्धि के कारण धन-संपदा का दुरुपयोग और नाश भी सुनिश्चित है और यदि हमारे पास सद्बुद्धि है तो हम श्रम, पुरुषार्थ, स्वविवेक से अपार धन-संपदा भी अर्जित कर सकते हैं और सुखी भी रह सकते हैं।

सद्बुद्धि होने के कारण हम सदैव शुभ कर्म, अच्छे कर्म, सत्कर्म कर सकते हैं, सन्मार्ग पर चल सकते हैं और उसके परिणामस्वरूप सुख, सफलता और समृद्धि पा सकते हैं। हम भगवत्प्राप्ति भी कर सकते हैं। इसलिए गायत्री मंत्र में भगवान से बुद्धि को पवित्र करने की प्रार्थना की गई है। यदि भगवान की भक्ति, प्रार्थना आदि से हमारा शरीर शुद्ध हो गया, निर्मल हो गया, शरीर स्वस्थ हो भी गया तो भी हमारा कल्याण नहीं हो सकता यदि हमारी बुद्धि पवित्र व निर्मल नहीं हुई।

यदि बुद्धि निर्मल नहीं हुई, पवित्र नहीं हुई तो हम फिर से पाप कर्मों में, बुरे कर्मों में लिप्त हो सकते हैं; क्योंकि पाप होता कहाँ से है? बुद्धि से, दुर्बुद्धि से, कुबुद्धि से, कुमति से। फिर से नए पाप होते रहेंगे और उसके परिणामस्वरूप हम जीवन में दुःख-ही-दुःख पाते रहेंगे।

हम दुर्बुद्धि के कारण फिर से पाप करेंगे, पर यदि बुद्धि शुद्ध हो गई, निर्मल हो गई, पवित्र हो गई तो हम पुनः कोई पाप कर्म करेंगे ही नहीं, हम बुरे कर्म करेंगे ही नहीं; क्योंकि निर्मल बुद्धि, पवित्र बुद्धि, सद्बुद्धि, सुमति कभी भी पाप कर्मों में, बुरे कर्मों में लिप्त नहीं होंगे।

पूज्य गुरुदेव का स्पष्ट मत है कि 'कुमति, कुबुद्धि ही सभी दुःखों की जननी है; क्योंकि कुमति से ही मनुष्य के मन में कुविचार आते हैं, फिर कुविचारों, बुरे विचारों से प्रेरित होकर व्यक्ति बुरे कर्म करता है और उसके परिणामस्वरूप वह दुःख पाता है। मनुष्य जैसा सोचता है, वह वैसा ही करता है और फिर वह वैसा ही बन जाता है। संसार में

जितने दुःख हैं, दुर्बुद्धि के कारण हैं। दुर्बुद्धि के कारण ही व्यक्ति के मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, दुर्भाव, द्वेष आदि भाव आते हैं, जिनसे प्रेरित होकर मनुष्य व्यभिचार, कुसंग, हिंसा, अनीति, अत्याचार, स्वार्थपरता, छल, लड़ाई-झगड़ा, आलस्य, व्यसन आदि बुरे कर्मों में लिप्त होता है और दुःखी होता है।'

दुर्बुद्धि से उत्पन्न समस्याओं का समाधान सद्बुद्धि से ही संभव है। इसलिए भगवान से माँगने योग्य गुण सद्बुद्धि ही है और गायत्री मंत्र सद्बुद्धि का मंत्र है। इसलिए इसे महामंत्र, मंत्रराज, कल्पवृक्ष, कामधेनु, पारस आदि विविध नामों से विभूषित किया गया है। संसार में यदि कोई सबसे बड़ी संपदा है तो वह सद्बुद्धि ही है और सबसे बड़ी विपदा यदि कोई है, तो वह कुबुद्धि है, कुमति है, दुर्बुद्धि है। जैसा कि रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

अर्थात जहाँ सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) है, सद्बुद्धि है, वहाँ नाना प्रकार की संपदाएँ (सुख की स्थिति) रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि (खोटी बुद्धि, दुर्बुद्धि कुमति) है, वहाँ परिणाम में विपत्ति (दुःख) रहती है। इसलिए रामचरितमानस के बालकांड में भी मति को, बुद्धि को निर्मल करने की प्रार्थना की गई है—

जनकसुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुना निधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ।
जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ॥

अर्थात राजा जनक की पुत्री, जगत की माता और करुणानिधान श्रीरामचंद्र जी की प्रियतमा श्री जानकी जी के दोनों चरणकमलों को मैं मनाता हूँ, जिनकी कृपा से निर्मल बुद्धि पाऊँ।

सुमति प्रदाता, सद्बुद्धि प्रदाता मंत्र होने के कारण ही गायत्री मंत्र को मंत्र शिरोमणि, मंत्र मुकुट, मंत्रराज, महामंत्र, सार्वभौम मंत्र होने का गौरव प्राप्त है। महामंत्र होने के कारण ही गायत्री को भारतीय संस्कृति की जननी कहा गया है। वेदों की जननी होने से इसे वेदमाता कहा गया है। देवों की माता होने से इसे देवमाता कहा गया है। विश्व की माता होने से इसे विश्वमाता कहा गया है।

गायत्री, भगवान की दिव्य आह्लादिनी शक्ति है, इसलिए गायत्री को माता कहा गया है और परमात्मा की, भगवान की उपासना ही गायत्री माता के रूप में, आद्यशक्ति के रूप में भारतीय संस्कृति में किए जाने की परंपरा रही है। वेद, उपनिषद् से लेकर पुराण शास्त्रों और रामायण, महाभारत आदि तक ऐसा कोई भी आगम-निगम ग्रंथ नहीं है, जिसमें गायत्री महाशक्ति की अभिवंदना न की गई हो।

ऋग्वेद—6.62.10, सामवेद—2.8.12, यजुर्वेद वा. सं. में—3.35-22, अथर्ववेद—19.17.1 में गायत्री की महिमा विस्तारपूर्वक गायी गई है। श्वेताश्वतर उपनिषद्—4.18 में इस महामंत्र की चर्चा है। गायत्री मंत्र के जप से मिलने वाले भौतिक व आध्यात्मिक लाभ अगणित प्रकार के हैं और उनमें भी सद्बुद्धि का विकास ही अपने आप में इतना बड़ा लाभ है कि अकेले उस आधार पर ही गायत्री को सर्वश्रेष्ठ मंत्र कहा जा सकता है।

गायत्री मंत्र जप और सविता देवता का नित्य व दीर्घकाल तक ध्यान करते रहने से साधक में सद्बुद्धि विकसित होती है। उसकी बुद्धि पवित्र और प्रकाशित होती है और उसमें नीर-क्षीर-विवेक की क्षमता जाग्रत हो जाती है। बुद्धि का परिष्कार होने पर प्रथम चमत्कार यह होता है कि मनुष्य वासना, तृष्णा की प्रवृत्तियों से ऊँचा उठकर मनुष्योचित धर्म, कर्म को समझने और तदनुरूप जीवन जीने के लिए अंतःप्रेरणा

प्राप्त करता है और उसके भौतिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

गायत्री मंत्र की उपासना के द्वारा आत्मा पर जमे हुए मल-विक्षेप हट जाते हैं, और आत्मा का शुद्ध 'सत्-चित्-आनंदस्वरूप' वैसे ही प्रकट होता है, जैसे बादलों के हटते ही सूर्य के प्रकाश से सारा आकाशमंडल प्रकाशित हो उठता है। गायत्री मंत्र में 24 अक्षर हैं, जिनका संबंध शरीर में स्थित ऐसी 24 ग्रंथियों से है, जो जाग्रत होने पर सद्बुद्धि प्रकाशक शक्तियों को सतेज करती हैं।

इसी महिमा और प्रभाव के कारण ऋषियों ने, संतों ने, योगियों ने गायत्री मंत्र और उपासना की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। आचार्य शंकर का कथन है कि 'बुद्धि का पवित्र होना, सद्बुद्धि होना, इतना बड़ा कार्य है, जिसकी तुलना संसार के किसी काम से नहीं हो सकती और उस बुद्धि को पवित्र और प्राप्त करने की प्रेरणा गायत्री द्वारा होती है।'

स्वामी विवेकानंद का कथन है कि 'राजा से वही वस्तु माँगी जानी चाहिए, जो उसके गौरव के अनुकूल हो। परमात्मा से माँगने योग्य वस्तु सद्बुद्धि है। सद्बुद्धि से सन्मार्ग पर प्रगति होती है और सत्कर्म से सब प्रकार के सुख मिलते हैं। गायत्री सद्बुद्धि का मंत्र है। इसलिए उसे मंत्रों का 'मुकुटमणि' कहा है।' स्वामी रामतीर्थ ने कहा है—'गायत्री का अभिप्राय बुद्धि को पवित्र कर उसे रामरुचि में लगा देना है। गायत्री पुकारती है कि बुद्धि में इतनी पवित्रता होनी चाहिए कि वह राम को काम से बढ़कर समझे।'

गायत्री महाविद्या के मर्मज्ञ परमपूज्य गुरुदेव यह स्पष्ट करते हैं कि 'गायत्री-उपासना से साधक को दैवी वरदान के रूप में सद्बुद्धि प्राप्त होती है और उसके प्रकाश में उन सब दुर्बलताओं, उलझनों, समस्याओं, कठिनाइयों का हल निकल आता है, जो मनुष्य को दीन-हीन, दुःखी, दरिद्र, चिंतातुर एवं कुमार्गगामी बनाती हैं। सद्ज्ञान, सद्बुद्धि की उपासना का नाम ही गायत्री-साधना है। जो इस साधना के साधक हैं, उन्हें आत्मिक, सांसारिक सुखों की कमी नहीं रहती, ऐसा हमारा सुनिश्चित विश्वास और दीर्घकालीन अनुभव है।'

गायत्री मंत्र का सीधा-सा अर्थ है कि 'भगवान सविता के श्रेष्ठ तेज का हम ध्यान करते हैं। वह सविता देव हमारी बुद्धि को पवित्र और प्रकाशित कर हमें सन्मार्ग पर चलाएँ।' भौतिक उत्कर्ष की आकांक्षा हो अथवा आत्मिक उत्कर्ष की, दोनों ही दृष्टि से गायत्री-उपासना श्रेष्ठ है, गायत्री मंत्र जप, गायत्री मंत्र लेखन श्रेष्ठ है। गायत्री सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम मंत्र है; क्योंकि गायत्री सद्बुद्धि प्रदाता मंत्र है। ❑

सरोवरों ने विधाता के सम्मुख अपनी शिकायत रखी कि जो श्रद्धा व सम्मान नदियों को प्राप्त है, वह सरोवरों को क्यों नहीं? विधाता गंभीर स्वर में बोले—"नदियाँ, घर-घर जाकर, स्थान-स्थान पर लोगों की प्यास बुझाती हैं, उनके खेतों को हरा-भरा करती हैं, उनके कष्टों का निवारण करती हैं, आप तो मात्र उन्हें दे पाते हैं, जो आप तक पहुँचते हैं। लोक-मंगल के लिए प्रव्रज्या कर प्रयास वालों का पुरुषार्थ निस्संदेह उनसे बड़ा हो जाता है, जो एक स्थान पर ठहरकर इस हेतु प्रयास करते हैं।

पर्व विशेष-बुद्ध पूर्णिमा

करुणा के प्रस्फुटन का महापर्व

भगवान बुद्ध का जन्म और इस धराधाम पर भागवत चेतना का बुद्धत्व के रूप में अवतरण दिवस—बुद्ध पूर्णिमा के रूप में मनाया जाता है। इस वर्ष 1 मई, 2026 दिन शुक्रवार को वैशाख पूर्णिमा के रूप में यह तिथि आ रही है।

हमारी संस्कृति, समाज व लोक परंपराओं में प्राचीनकाल से अवतारी महापुरुषों, संतों, भक्तों, लोकसेवकों की जयंती को अत्यंत हर्ष-उल्लास एवं भक्ति-भावना से मनाए जाने की सुदीर्घ परंपरा रही है। इस पर्व का पहला उद्देश्य तो यही है कि जिस महामानव की जयंती है, उनके प्रति अपनी आस्था-भावना को प्रकट करना, परंतु इसके साथ ही दूसरा एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य भी सन्निहित रहता है, वह यह कि जिनकी जयंती मनाने जा रहे हैं, उनका जीवन और उपदेश हमें क्या सीख देते हैं अर्थात स्वयं के उत्थान एवं उत्कर्ष के प्रति प्रेरित एवं संकल्पित होने का भी यह पर्व है।

इस वर्ष बुद्ध पूर्णिमा पर यही प्रयास हो कि हमारे अंत:भावों की श्रद्धा के साथ-साथ कोई सार्थक संकल्प भी जुड़ा हो, तभी इस महापर्व की सार्थकता जीवन में साकार हो सकेगी। यह दिन अनेक दृष्टि से विलक्षण, दिव्य और अद्वितीय भी है। इतिहास में शायद ही इतने दुर्लभ संयोगों को समाहित किए हुए कोई दूसरा दिन आता हो। पहला यह कि महाकरुणा के अवतार के रूप में इस दिन भगवान बुद्ध का जन्म हुआ। दूसरा दैवी संयोग कि इसी दिन बोधिवृक्ष के नीचे बुद्धत्व की प्राप्ति हुई और यह भी अत्यंत विस्मयकारी है कि इसी दिन भगवान बुद्ध का महानिर्वाण भी हुआ।

यह अद्भुत, अनुपम घटना स्पष्ट करती है कि धरती पर बुद्ध का अवतरण और बुद्धत्व की प्राप्ति एक विरल, दुर्लभ और दैवी घटना है। भारतवर्ष की धर्मप्रेमी-मानवतापोषक संस्कृति को जीने व मानने वाले लोग यह बखूबी जानते हैं कि यहाँ की पुण्यभूमि पर समय-समय पर अवतारी सत्ताओं का आगमन होता रहा है। प्रत्येक के आने की एक सुनिश्चित पृष्ठभूमि और महान प्रयोजन रहा है। समय की माँग, समस्याओं का समाधान और नए युग का प्रवर्तन—ये विशेषताएँ सभी महामानवों के साथ जुड़ी रहती हैं।

भगवान बुद्ध का जीवन तो स्वयं परमात्मा का मानव देह में साकार हो मृत्युलोक में विचरण करने की अलौकिक घटना है। उनका आविर्भाव काल ईसापूर्व 563 से लेकर ईसापूर्व 483 तक का माना जाता है। मानवीय गणनाओं के इस काल में झाँकने से पता चलता है कि यह काल बुद्ध अवतरण से पहले मानव जीवन की क्रूर विसंगतियों, पाखंड, अत्याचार, पीड़ा और दुष्परंपराओं के अतिरेक से गुजर रहा था।

धर्म, संस्कृति और मानवता का नेतृत्व करने वाली धाराएँ घोर आडंबर, पाखंड, दुराग्रह और विलासिता में लिप्त हो दिशाहीन हो चुकी थीं। जनसामान्य को अत्याचार, शोषण और हिंसा के साये में गहन पीड़ा और वेदना में जीवन गुजारने की विवशता उत्पन्न हो रही थी। ऐसी विषम परिस्थितियों में भगवान बुद्ध महाकरुणा का दिव्य प्रकाश लेकर प्रकट हुए थे। उनका बुद्धत्व गहन

मानवीय वेदना और उसके निवारण के उपाय की प्यास से प्रकट हुआ।

जब उन्होंने देखा कि सामने जो लोग हैं, जो जनसमाज है, उनमें सर्वत्र दुःख, क्लेश, मृत्यु-रोग आदि ही दिखाई देते हैं तथा सुख, आनंद, प्रसन्नता का कोई आधार नजर नहीं आता—ऐसे अंतर्वेदना से उत्पन्न विरक्ति भाव में ही वे सुख-साधन, राज्य-वैभव को ठोकर मारकर मानवता के कष्टों को दूर करने की विधि खोजने निकल पड़े थे।

उन्होंने अपने साधनाकाल में बुद्धत्व को प्राप्त कर इस सत्य का बोध किया कि संसार में सब कुछ दुःखमय ही है। यहाँ सुख, आनंद की तलाश व्यर्थ है, किंतु अज्ञानतावश इसी संसार में सुख की तलाश करने की व्यर्थ चेष्टा में मनुष्य जन्म-जन्मांतर के लिए दुःखों के संसार में ही उलझता चला जा रहा है।

जो लोग समाधान करने को उत्प्रेरित हैं, वे भी अतिवाद में जाकर फँस गए हैं—तपस्वी वर्ग शरीर पर घोर अत्याचार कर स्वयं को जीर्ण कर रहे हैं, तो दूसरी ओर साधन-समृद्धि के मद में चूर एक वर्ग घोर विलासिता में विचरण कर रहा है। दुःखों के समाधान का मार्ग किसी के पास नहीं है। दोनों तरह के अतिवाद का परिणाम भी दुःख ही दिखाई पड़ता है।

ऐसे में भगवान ने बीच का मार्ग खोज निकाला, जिसे मध्यम मार्ग कहा जाता है। न अति तप, न अति भोग। जीवन की मर्यादाओं में रहते हुए ही दुःख निराकरण का उपाय किया जा सकता है—यही उपदेशना उनके दुःख से निवृत्ति मार्ग का आधार है।

बुद्धत्व प्राप्ति के उपरांत महात्मा बुद्ध ने विश्वमानवता को जो उपदेश दिया, वह यही है कि दुःखों से मुक्ति इसी जीवन में संभव है और इसे हर कोई प्राप्त कर सकता है। दुःखों से मुक्ति होने पर आनंदमय जीवन को प्राप्त किया जा सकता है।

दुःखों की इतनी मार्मिक और स्पष्ट व्याख्या एवं इससे छुटकारा पाने के सर्वसुलभ उपाय को जनभाषा में प्रचारित-प्रसारित करने वाले बुद्ध एकमात्र महामानव हैं। अन्य किसी के विचारों में शायद ही दुःखों की इतनी विशद चर्चा हुई हो। दुःख-निवृत्ति के मार्ग की प्रत्येक बाधाओं को दृढ़तापूर्वक खारिज करते हुए भगवान बुद्ध ने अपने ज्ञान, अनुभव और प्रयत्न से सारी विश्व-वसुधा में प्रेम, दया और करुणा की सजल धारा बहा दी।

किसी शाश्वत आत्मा और ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करने वाले भगवान बुद्ध पर कुछ लोगों ने नास्तिकता का आक्षेप भी किया है, परंतु बुद्ध तो साक्षात् अध्यात्म के शिखर हैं। वेद-उपनिषद् की ज्ञानयात्रा जिस आत्मज्ञान के शिखर पर जीवन को आरूढ़ करती है, बुद्ध का मार्ग भी वहीं पहुँचता है। '**अप्प दीपो भव**' और '**अयमात्मा ब्रह्म**' की अनुभूति समान रूप से अध्यात्म का शीर्ष है। अंतर सिर्फ बुद्ध की अभिनव दृष्टि और साधन-विवेचन का है।

प्रकारांतर से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध भी अन्य अवतारी पुरुषों, ऋषियों की भाँति अपने युग में सनातन की शाश्वत मूल्यधारा का ही प्रखर व मुखर नेतृत्व करते हैं। आप्तवचनों की भाँति उनके विचार भी मानव-कल्याण के लिए कालजयी और शाश्वत हैं। इन्हीं कालजयी विचारों को आत्मसात् करने और जीवन को बोध-ज्ञान के मार्ग पर ले जाने की प्रेरणा-प्रकाश लेकर आता है—यह बुद्ध पूर्णिमा का महापर्व।

यही वह दिन है, जब संपूर्ण मानवता को सर्वथा एक नई दृष्टि-नई दिशा-नया जीवन-

मार्ग प्राप्त हुआ है। इसी दिन वसुधैव कुटुंबकम् के महान आदर्श को चरितार्थ बनाने वाले मंत्रों की एक प्रबल धारा **'बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि'** के दिव्य स्वरों में विश्व क्षितिज पर गुंजायमान हुई थी।

बुद्ध पूर्णिमा के इस पावन दिन पर सबसे बड़ी प्रेरणा भगवान के दिव्य संदेशों को अंत:भावों में उतारने की है। प्रत्येक के जीवन में नानाविध दु:ख हैं और सुख, शांति, आनंद की आकांक्षा भी सभी में समान रूप से तरंगित रहती है, तब ऐसे में भगवान बुद्ध से बढ़कर भला और कहाँ इतनी सरलता से दु:ख-मुक्ति और सुख-प्राप्ति का मार्ग प्राप्त हो सकता है।

दु:खों के संताप-पीड़ा का शांत हो जाना ही तो सुख-आनंद है। यही तो निर्वाण है। इसे मध्यम मार्ग पर चलकर हर कोई अत्यंत सरलता से प्राप्त कर सकता है। न कठिन तपश्चर्या, न पूर्ण स्वच्छता—केवल सही, सम्यक रूप से जीवन व्यवहार के कार्यों को करना, बस, इतना ही सार है उनकी दिव्य वाणी का।

खाना-पीना, सोना-बैठना, चिंतन-मनन, वाणी-व्यवहार—सब कुछ सम्यक रूप से करना ही भगवान बुद्ध के विचारों की मूल प्रेरणा है। इसी प्रेरणा को ग्रहण कर जीवन के कार्यों-कर्त्तव्यों में परिवर्तन लाने के लिए संकल्पित होने का सुअवसर लेकर यह पर्व प्रस्तुत होता है।

बाह्य रूप से तो इस पर्व पर करोड़ों आस्थावान भक्तों की श्रद्धा का सैलाब उमड़ता ही है। देश-विदेश में, विशेषकर एशियाई देशों में स्थित भगवान के पवित्र स्थलों पर विशेष आयोजन होते ही हैं परंतु इसकी सार्थकता का उत्सव, भीतर के प्रज्वलित होने वाले आत्मप्रकाश के लिए संकल्पित हो जाने में सन्निहित है।

बुद्ध और बुद्धत्व—दोनों हमारे जीवन के अभिन्न अंग बनें और हम भी श्रेष्ठ मानव की भाँति सतत प्रेम, करुणा, दया और संवेदना बाँटते चलें—यही शुभकामना है, इस पवित्र पर्व की ❑

गुरु से शिष्यों ने प्रश्न किया—"गुरुवर! यदि परिस्थितियाँ विषम हों और उस अवधि में किसी जाग्रत आत्मा का जन्म हो तो क्या ऐसा संभव है कि वह आत्मा स्वयं को मिले अवसर को गँवा दे।"

गुरु ने उत्तर दिया—"शिष्यो! जाग्रत आत्माएँ कभी अवसर नहीं चूकतीं। वे जिस उद्देश्य को लेकर अवतरित होती हैं, उसे पूरा किए बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता। जाग्रत वे कहलाते हैं, जो अदृश्य जगत् में बह रहे प्रकृति के प्रवाह को पहचानते हैं व परिवर्तन में सहायक बनते हैं। दूसरे जब आगे चलकर उन परिणामों को देखते हैं तो पछताते हैं कि हमने अवसर की उपेक्षा क्यों कर दी थी।"

गुण, कर्म, स्वभाव की प्रज्ञायोग-साधना

आज मनुष्य नानाविध व्याधियों का शिकार हो रहा है। मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग जैसी शारीरिक बीमारियों व तनाव, अवसाद, कुंठा, चिंता आदि मानसिक समस्याओं से ग्रसित लोगों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। आत्महत्या की दर भी बढ़ती जा रही है।

मोबाइल की आभासी दुनिया में भ्रमित हो व्यक्ति जीवनलक्ष्य से दूर होता जा रहा है। व्यक्ति-का-व्यक्ति से विश्वास उठता जा रहा है। तलाक के आँकड़े हर वर्ष बढ़ते जा रहे हैं। परिवार टूट-बिखर रहे हैं और व्यक्ति निराश हो चला है और इन सबका मूल कारण एक ही है—मनुष्य की विकृत जीवनशैली।

विकृत जीवनशैली से उपजी उपरोक्त सभी समस्याओं को जड़ से समाप्त करने हेतु एक स्वस्थ, उत्कृष्ट और आध्यात्मिक जीवनशैली की आवश्यकता है जिसे प्रज्ञायोग-साधना कहते हैं। '21वीं सदी उज्ज्वल भविष्य' के उद्घोषक व सूत्रधार पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित प्रज्ञायोग-साधना एक उत्कृष्ट, स्वस्थ व आध्यात्मिक जीवनशैली है, जिसे अपनाकर व्यक्ति स्वस्थ, सुखी जीवन जीते हुए आध्यात्मिक उत्कर्ष को भी प्राप्त कर सकता है।

'प्रज्ञा' का अर्थ है—'बुद्धि की उत्कृष्टतम स्थिति और योग कहते हैं जीवात्मा के परमात्मा से जुड़ जाने को।' प्रज्ञायोग का अर्थ है उत्कृष्टतम अथवा परिष्कृत बुद्धि के द्वारा जीवात्मा का परमात्मा से जुड़ जाना।

प्रज्ञायोग-साधना का लक्ष्य है व्यक्ति की बुद्धि व चेतना को परिष्कृत करके, उत्कृष्ट बनाकर उसे विराट चेतना से जोड़ देना और व्यक्ति और भगवान के बीच, जीवात्मा और परमात्मा के बीच दिव्य आदान-प्रदान का मार्ग खोल देना। अब प्रश्न उठता है कि प्रज्ञायोग-साधना करें कैसे?

प्रज्ञायोग-साधना वस्तुतः कर्म, भक्ति और ज्ञान—इन तीन योगों का दिव्य सम्मिश्रण है। प्रज्ञायोग साधना का प्रथम चरण है—आत्मबोध की साधना। 'आत्मबोध' का अर्थ है अपने उद्गम, स्वरूप, उत्तरदायित्व एवं लक्ष्य को समझना, तदनुरूप दृष्टिकोण एवं क्रियाकलाप का निर्धारण करना।

प्रातःकाल आँख खुलने से लेकर बिस्तर से नीचे उतरने में थोड़ा समय लगता है। इसी समय को नया प्रभात, नया जीवन मानकर ही बिस्तर पर पड़े-पड़े अथवा बिस्तर पर सुखासन में बैठकर आत्मबोध की साधना करनी चाहिए।

सूर्योदय से पहले प्रातःकाल आँख खुलते ही यह भाव चिंतन करें कि यह जागरण मेरे लिए नया जन्म है। बिस्तर पर सुखपूर्वक बैठकर लंबी साँस खींचते हुए यह भावना करें कि मैं आज नया जीवन धारण कर रहा हूँ। साँस धीरे-धीरे छोड़ें। आज के जीवन के लिए परमात्मा को धन्यवाद, सभी के प्रति कृतज्ञता का भाव। आज के इस एक दिन के जीवन के हर क्षण, हर पल का सदुपयोग करने का भाव संकल्प लें।

दिनभर के कार्यक्रम की भावनात्मक योजना अपनी दैनिक डायरी में नोट कर लें। मुझे नए सिरे से जीवन का प्रबंधन करना है—इस भाव के साथ दिन का शुभारंभ करें। 'हे प्रभु! आज एक दिन आपके नाम'—इस दिव्य भाव से दिन का शुभारंभ करें। नित्य क्रिया से निवृत्त होकर स्नानादि कर

प्रज्ञायोग-साधना के द्वितीय चरण में प्रज्ञायोग के आसनों व प्राणायामों का अभ्यास करें।

प्रज्ञायोग के आसनों में ताड़ासन, पादहस्तासन, वज्रासन, उष्ट्रासन, योगमुद्रासन, शशांकासन, भुजंगासन, तिर्यक भुजंगासन (बाएँ से दाएँ), अर्द्धताड़ासन, उत्कटासन, शक्तिसंवर्द्धनासन आदि का अभ्यास करें। सोलह चरणों के इन बारह आसनों के योग से 'प्रज्ञायोग आसन' का एक चक्र पूरा होता है। प्रारंभिक साधक इसे प्रतिदिन 2-3 बार करें, किंतु अभ्यास-क्रम बढ़ने पर इसे और गतिपूर्वक करते हुए सोलह चक्र तक पूरा करें।

उपरोक्त आसनों के अभ्यास के पश्चात शिथिलीकरण क्रिया कर लें। प्रज्ञायोग आसन का अभ्यास शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक प्राण-ऊर्जा में वृद्धि करता है। संकल्पशक्ति के विकास में सहायक होता है। फेफड़ों की कार्यक्षमता में वृद्धि करता है और मन को सकारात्मक शक्तियों से भरता है। प्रज्ञायोग आसनों का अभ्यास प्रारंभ में किसी योग्य मार्गदर्शक की देख-रेख में करें।

जिन साधकों को प्रज्ञायोग के आसनों का अभ्यास करने में असुविधा महसूस होती है, वे आसनों का अभ्यास करने के बजाय प्रातःकाल तेज कदमों से 15-20 मिनट तक भ्रमण करें। प्रातःकाल की शुद्ध वायु में तेज कदमों से भ्रमण करना भी एक अच्छा व्यायाम है। तत्पश्चात सुखासन में बैठकर प्राणायाम का अभ्यास करें। प्राणशक्ति को आकर्षित, आमंत्रित, अवशोषित व नियंत्रित करना ही प्राणायाम कहलाता है।

प्राणायाम के अंतर्गत नाड़ीशोधन प्राणायाम व प्राणाकर्षण प्राणायाम का अभ्यास अधिक लाभप्रद है। नाड़ीशोधन प्राणायाम के अभ्यास में तीन बार बाएँ नासिका छिद्र से साँस खींचते और छोड़ते हुए नाभिचक्र में चंद्रमा का शीतल ध्यान, तीन बार दाहिने नासिका छिद्र से साँस खींचते और छोड़ते हुए सूर्य का उष्ण प्रकाश वाला ध्यान तथा आखिरी बार दोनों नासिका छिद्रों से साँस खींचते हुए मुख से साँस निकालने की प्रक्रिया संपादित की जाती है।

वहीं प्राणाकर्षण प्राणायाम में यह भाव ध्यान किया जाता है कि अखिल आकाश में तेज और शक्ति से ओत-प्रोत प्राणतत्त्व हिलोरें ले रहा है, गरम भाप के, सूर्य के प्रकाश में चमकती बादलों जैसी शक्ल के प्राण का उफान हमारे चारों ओर उमड़ता चला आ रहा है और उस प्राण-उफान के बीच हम निश्चिंत, शांत चित्त, निर्विकार एवं प्रसन्न मुद्रा में बैठे हैं। नित्य 5 से 10 मिनट तक प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है।

प्राणायाम शरीर और मन—दोनों को शांत करता है, प्रतिरक्षा-प्रणाली को मजबूत करता है, शरीर से विषाक्त पदार्थों को निकालने में मदद करता है। इसमें अच्छी नींद आती है, तनाव, चिंता दूर होती है, फेफड़ों की क्षमता में वृद्धि होती है। यदि आसन एवं प्राणायाम के अभ्यास से पूर्व स्नान न किया हो तो आसन एवं प्राणायाम के अभ्यास के आधे घंटे बाद स्नान कर स्वच्छ वस्त्र धारण कर प्रज्ञायोग-साधना के तीसरे चरण यानी उपासना के लिए तैयार हो जाएँ।

प्रज्ञायोग-साधना का तृतीय चरण है—उपासना। उपासना का अर्थ है पास बैठना। किसके पास बैठना? परमात्मा के पास। वह परमात्मा, जो सद्गुणों का समुच्चय है, जो सर्वज्ञ, सर्वव्यापी और सर्वशक्तिशाली है, जो निर्गुण-निराकार है, पर सगुण, साकार रूप में प्रकट होता है।

परमात्मा प्रेममय है और वह प्रेम से ही प्रभावित होता है। चकोर जैसे चंद्रमा को निहारते हुए सारी रात बिताता है, भ्रमर जैसे कमल की शोभा और

सुगंध पर मुग्ध बना मँडराता है, उसी प्रकार प्रेम-भावना से भरे अंत:करण के साथ उपासक को परमात्मा को पाने के लिए आतुर होना चाहिए। प्रेमभरे हृदय में ही परमात्मा का प्राकट्य होता है और उपासक को अपने हृदय में पल-पल परमात्मा की आनंदानुभूति होती है। उपासक हर पल आनंदमग्न रहता है।

साकार ध्यान अथवा परमात्मा की साकार उपासना के अंतर्गत उपासक का अपने हृदय कमल पर आसीन अपने आराध्य परमात्मा के सगुण-साकार रूप उनकी मधुर-मनोहर छवि का ध्यान करना चाहिए और ध्यान के साथ अपने इष्ट, आराध्य से संबंधित मंत्र का मानसिक जप करना चाहिए और निराकार ध्यान, निराकार उपासना के अंतर्गत आकाश मंडल में उदीयमान प्रात:कालीन भगवान सूर्य का ध्यान, गायत्री मंत्र का मानसिक जप करते हुए करना चाहिए।

परमात्मा प्रकाशस्वरूप है, इसलिए परमात्मा के रूप में प्रात:कालीन उदीयमान सूर्य का ध्यान करना चाहिए। प्रभातकालीन स्वर्णिम सवितादेव की रश्मियों की अमृतवर्षा में स्नान करने का और उन रश्मियों के शरीर में प्रवेश करने, शरीर के ज्योतिर्मय होने का भाव ध्यान करना चाहिए।

साधक को नित्य गायत्री-उपासना कैसे करनी चाहिए? इस संबंध में महर्षि विश्वामित्र कहते हैं कि प्रकाशसहित सत्यानंदस्वरूप ब्रह्म को हृदय में और सूर्यमंडल में ध्यान करते हुए गायत्री मंत्र का मानसिक जप करना चाहिए।

गायत्री-उपासना से उपासक की मति निर्मल होती है, बुद्धि उत्कृष्ट और परिष्कृत होती है। बुद्धि परिष्कृत होने से वह सदैव शुभ कर्म करता है, और शुभ कर्मों के परिणामस्वरूप वह शुभ फल प्राप्त करता है।

वह तनाव, अवसाद, कुंठा, चिंता से मुक्त होकर सदैव प्रफुल्लित रहता है और श्रम, पुरुषार्थ के द्वारा जीवन के हर क्षेत्र में सफल होता है। वह सदैव सन्मार्ग पर चलता हुआ भौतिक सुख व आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त करता है।

प्रारंभ में उपासना 5 मिनट से 15 मिनट तक करनी चाहिए, पर बाद में इसे घंटों तक किया जा सकता है। भक्तियोग को ही उपासना कहते हैं। उपासना के साथ साधना और आराधना भी जुड़े हुए हैं।

साधना अर्थात इंद्रिय-संयम, विचार-संयम, अर्थ-संयम और समय-संयम का पालन करना चाहिए। नित्य सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करना चाहिए। आराधना अर्थात अखिल विश्व-ब्रह्मांड के रूप में अभिव्यक्त हो रहे परमात्मा की सेवा अर्थात व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र की सेवा।

उपासक को शुद्ध, सात्त्विक आहार ही ग्रहण करना चाहिए। हमें फास्ट फूड को अपनी दिनचर्या में नहीं शामिल करना चाहिए। आहार स्वाद नहीं, स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर ग्रहण करना चाहिए। 'जैसा खाए अन्न, वैसा भए मन।' अर्थात हम जैसा अन्न खाते हैं, हमारा मन भी वैसा ही बनता है। शुद्ध, सात्त्विक आहार से ही मन शुद्ध व सात्त्विक बनता है और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

प्रज्ञायोग-साधना का चतुर्थ चरण कर्मयोग का अभ्यास है। अपने कर्त्तव्य-कर्म को कुशलता व पूर्ण एकाग्रता के साथ बिना परिणाम की चिंता किए करना चाहिए। फल की चिंता करते रहने से व्यक्ति की शारीरिक-मानसिक ऊर्जा का क्षरण होता है और व्यक्ति का ध्यान एक जगह केंद्रित नहीं हो पाता है। फलस्वरूप व्यक्ति अपने काम में पूर्ण एकाग्र नहीं हो पाता है और पूर्ण एकाग्र नहीं होने से उस कार्य में उसकी पूरी शारीरिक-मानसिक ऊर्जा नहीं लग पाती है।

हमारा हर कर्म परमात्मा को समर्पित है और हमारा हर कर्म परमात्मा के लिए ही है। इस भाव के साथ कर्म करने से कर्म के फल की चिंता नहीं होती, जिससे व्यक्ति अधिक कुशलता व पूर्ण एकाग्रता के साथ अपना हर कर्म करता है और सफल होता है। कभी असफल होने पर भी वह घबराता नहीं, बल्कि और अधिक ऊर्जा व संकल्प के साथ वह फिर से काम करता है और आखिरकार सफल होता है। यह कर्मयोग की साधना विद्यार्थी ही नहीं, हर व्यक्ति के लिए उपयोगी है।

प्रज्ञायोग-साधना का पंचम चरण है—तत्त्वबोध अर्थात ज्ञानयोग की साधना। रात्रि में हलका आहार लेने के पश्चात कुछ देर घूमें-टहलें। फिर हाथ-पैर धोकर, बिस्तर पर सोने के लिए जाएँ। बिस्तर पर सुखपूर्वक लेटकर लंबी-गहरी साँस लें और छोड़ें। अपने द्वारा दिनभर किए गए कार्यों की समीक्षा करें। यदि किसी के प्रति कुछ गलती हुई हो तो उससे मानसिक रूप से क्षमा माँग लें। किसी के प्रति मन में द्वेष नहीं, कोई चिंता नहीं, तनाव नहीं, वरन सबके प्रति कृतज्ञता के भाव रखें।

दिनभर के क्रियाकलापों में जहाँ भूल हुई, उसका प्रायश्चित और भरपाई तथा आगे सुधार का निश्चय करें। दिनभर के कार्यों का लेखा-जोखा करें और मैं एक दैनिक जीवन को पूरा करके निद्रारूपी मृत्यु की गोद में जा रहा हूँ, मैं परमात्मा की शरण में जा रहा हूँ—यह भाव ध्यान करें।

अपने आराध्य का, परमात्मा का स्मरण करते हुए और भावी निर्धारण एवं आने वाले कल की अपनी दिनचर्या की मानसिक भूमिका बनाते हुए, यह सुरदुर्लभ मानव जीवन देने के लिए परमात्मा को बार-बार धन्यवाद कहते हुए, निद्रा की गोद में समा जाएँ। इससे गहरी और मधुर निद्रा आती है। इसे योगनिद्रा भी कहते हैं। आत्मबोध से शुरू हुई प्रज्ञायोग-साधना तत्त्वबोध के साथ संपन्न होती है और प्रज्ञायोग साधना के पाँच चरण पूर्ण होते हैं।

आत्मबोध और तत्त्वबोध, दोनों वस्तुतः ज्ञानयोग की ही साधना हैं। प्रज्ञायोग-साधना को शरीर, प्राण और मन अर्थात कर्म, भाव और चिंतन को परिष्कृत करने, विकसित करने की वैज्ञानिक पद्धति भी कह सकते हैं। ❑

एक बार एक ब्राह्मण धर्मराज युधिष्ठिर के पास दान की अपेक्षा से पहुँचा। महाराज युधिष्ठिर उस समय किसी कार्य में व्यस्त थे तो उन्होंने उस ब्राह्मण को अगले दिन आने को कहा। भीमसेन ने जब उन्हें ऐसा करते देखा तो वे बोले—"महाराज! आप कहें तो मंगल वाद्य बजाने वालों को बुला लूँ।"

युधिष्ठिर ने पूछा—"भ्राता! ऐसा क्या अवसर आ गया कि मंगल वाद्य बजाने वालों को बुलाना पड़ रहा है।"

भीम बोले—"महाराज! आपने उस ब्राह्मण को अगले दिन आने को कहा है। समय पर व काल पर यदि आपका नियंत्रण हो गया है तो यह तो वृहद आयोजन का विषय बन ही जाता है।" युधिष्ठिर को अपनी भूल का भान हुआ, उन्होंने तुरंत ब्राह्मण को बुलाकर उसे यथायोग्य दान देकर विदा किया व भीम से बोले—"भ्राता! तुमने आज मुझ पर बड़ा उपकार किया व मुझे एक बड़ी भूल करने से बचा लिया।"

ध्रुव का निश्चय अटल व अविचल

प्राचीनकाल की बात है। उत्तानपाद नाम के एक प्रतापी राजा थे। राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं—सुनीति और सुरुचि। सुनीति बड़ी रानी थी और सुरुचि छोटी।

दोनों रानियों का स्वभाव एकदूसरे से बिलकुल विपरीत था, क्योंकि सुनीति जहाँ धर्मशील और पतिव्रता थी, वहीं सुरुचि अत्यंत कुटिल और कर्कश थी। हाँ! रूप-यौवन में सुरुचि सुनीति से अवश्य श्रेष्ठ थी और इसलिए उत्तानपाद उसके प्रति अधिक आकर्षित थे और सुरुचि की अनुचित बातों का भी वह समर्थन करते थे और प्रायः वह सुनीति की उपेक्षा किया करते थे।

दोनों रानियों के एक-एक पुत्र थे—ध्रुव और उत्तम। ध्रुव सुनीति के पुत्र थे और उत्तम सुरुचि के। एक दिन राजा उत्तानपाद अपनी छोटी रानी सुरुचि के साथ बैठे वार्तालाप कर रहे थे कि तभी ध्रुव कहीं से खेलते हुए वहाँ आया और अपने पिता की गोद में बैठ गया।

ध्रुव का पिता की गोद में बैठना उसकी सौतेली माँ सुरुचि को अच्छा नहीं लगा। उसने तुरंत ध्रुव को राजा की गोद से नीचे उतार दिया और बोली—"राजा की गोद में बैठने का अधिकार मात्र और मात्र मेरे पुत्र उत्तम का है, तुम्हारा नहीं। तुम जाकर अपनी माँ की गोद में बैठो।"

उस समय ध्रुव की उम्र मात्र पाँच वर्ष की थी। विमाता के इस दुर्व्यवहार से बालक ध्रुव की आँखें भर आईं। वह बिलखता और सिसकता हुआ अपनी माता की गोद में जा गिरा और फूट-फूटकर रोने लगा। "तुम क्यों रो रहे हो मेरे लाल? क्या तुम्हें किसी साथी ने परेशान किया है? मारा है?"

माँ के ऐसे प्रश्नों को सुनकर बालक और भी रोने लगा और बोला—"मुझे किसी साथी ने नहीं मारा माँ। मुझे खेलते हुए कोई चोट भी नहीं आई है। मुझे तो छोटी माँ ने डाँटते हुए पिता की गोद से नीचे उतार दिया माँ; क्योंकि उनका कहना है कि पिता की गोद पर सिर्फ उनके पुत्र का ही अधिकार है।"

यह सुनकर तो ध्रुव की माँ भी बहुत आहत हुई, किंतु वह कर भी क्या सकती थी? अपने पुत्र को पुचकारते हुए बोली—"पुत्र! तुम दुःखी मत हो। पर हाँ, यदि तुम गोद में बैठना ही चाहते हो तो परमपिता की गोद में बैठो। तुम्हारे पिता की गोद से तुम्हें तुम्हारी सौतेली माँ उतार सकती है, पर जो परमपिता की गोद में जा बैठता है, उसे उनकी गोद से कोई नहीं उतार सकता।"

"पर वह परमपिता, वह भगवान कौन हैं और रहते कहाँ हैं माँ?"—निर्मल हृदय ध्रुव ने अपनी माँ से पूछा। पुत्र को समझाते हुए माँ बोली—"पुत्र! जैसे यह राजमहल तुम्हारे पिता का है और वे इस राज्य के राजा हैं, वैसे ही इस संसार, इस सृष्टि को भगवान ने बनाया है और वे ही इस संसार के, इस सृष्टि के राजा हैं।"

"पर वे रहते कहाँ हैं माँ?" ध्रुव ने पुनः प्रश्न किया। माँ ने कहा—"पुत्र! वे सर्वव्यापी हैं, वे सर्वत्र हैं, वे सर्वज्ञ हैं, इसलिए उन्हें तुम जहाँ भी पुकारोगे, याद करोगे, उनकी आराधना करोगे, उनसे प्रेम करोगे, वहीं वे तुम्हारी पुकार सुनेंगे और तुम्हारी अभिलाषा पूरी करेंगे।"

यह सुनकर बालक ध्रुव ने अपनी माता को प्रणाम किया और राजभवन से निकल वन की ओर बढ़ चला। चूँकि सुनीति को भगवान में पूर्ण विश्वास था, इसलिए उसने भी अपने पुत्र को वन जाकर भगवान की आराधना करने से नहीं रोका।

बालक ध्रुव दृढ़ निश्चय के साथ वन की ओर चला जा रहा था कि तभी उसे मार्ग में नारद जी मिल गए। नारद जी को देखकर बालक ध्रुव ने उन्हें प्रणाम किया। नारद जी ने उसे आशीर्वाद दिया और पूछा— ''नन्हे बालक! इस प्रकार राजभवन छोड़कर तुम अकेले कहाँ जा रहे हो?'' सरल हृदय बालक ने नारद जी को सब कुछ बता दिया।

नारद जी बोले—''लेकिन ध्रुव तुम तो बहुत छोटे हो। तपस्या का मार्ग बड़ा कठिन है। इस मार्ग पर चलना कोई बच्चों का खेल नहीं। जाओ तुम घर लौट जाओ।'' पर ध्रुव तो ध्रुव था। वह था तो पाँच वर्ष का, पर उसका निश्चय अटल था। वह अपने निश्चय से, संकल्प से अलग होने को तैयार न था। नारद जी तो बालक ध्रुव की परीक्षा ले रहे थे।

वे समझ गए कि ध्रुव भगवान की आराधना के लिए दृढ़ निश्चयी है। वे ध्रुव पर प्रसन्न हुए और बोले—''तुम्हारी माता ने यह ठीक ही कहा है कि भगवान की आराधना से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। तुम्हें तुम्हारी विमाता तुम्हारे पिता की गोद से उतार सकती है, पर जो परमपिता की गोद में जा बैठता है, उसे कोई भी नीचे नहीं उतार सकता। रही परमपिता की आराधना की बात तो पवित्र मन से, निश्छल मन से, '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' का उच्चारण करते हुए परमात्मा को पुकारते रहो। वह तुम्हारी पुकार एक-न-एक दिन अवश्य सुनेंगे।''

इस प्रकार ध्रुव को उपदेश देकर नारद जी वहाँ से चले गए और उनके कहे अनुसार ध्रुव यमुना जी के किनारे मधुवन में जा पहुँचा और तप करने लगा। कंदमूल, फल के सहारे रहकर तपस्या करते हुए अनेक कष्ट-कठिनाइयाँ आईं।

कई बाधाएँ आईं, आँधी-पानी, चिलचिलाती धूप, ठिठुरनभरी सरदी, मन में नकारात्मक विचार आदि सबका सामना करते हुए भी ध्रुव अपनी तपस्या में, आराधना में अटल रहा, अडिग रहा। यहाँ तक कि वन्य पशुओं का भी उसे भय नहीं रहा। इस प्रकार तप करते हुए ध्रुव को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

ध्रुव के मन में कई बड़े भयानक विचार उत्पन्न हुए, जिन्होंने उसे भगवान की आराधना से विचलित करने का प्रयास किया, पर मन के ऐसे विचारों पर ध्यान न देते हुए उसने भगवान की आराधना जारी रखी।

इस प्रकार तपस्या करते हुए छह माह बीत गए। तब करुणासिंधु भगवान ने अपने भक्त ध्रुव पर करुणा की और वे तत्काल ध्रुव के समक्ष प्रकट हुए। अपने समक्ष भगवान को देखकर ध्रुव के हृदय में अलौकिक आह्लाद हुआ, आनंद हुआ, शरीर रोमांचित हो गया, उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा, नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे और वे प्रभु के चरणों में लेट गए।

भगवान ने ध्रुव को अपने अंक में भर लिया और बोले—''पुत्र! तुम्हारे दृढ़ निश्चय और सच्ची भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हारे सच्चे प्रेम के कारण ही प्रकट हुआ हूँ। पुत्र! ग्रह-नक्षत्रों से ऊपर तुम्हें ध्रुवपद प्राप्त होगा। जीवनभर तुम पर मेरी अनोखी कृपा बरसती रहेगी और अंत में तुम मेरे पास ही आओगे, जहाँ से तुम्हें फिर लौटना नहीं होगा। अब तुम वापस अपने घर जाओ। अपने पिता के बाद तुम राजसिंहासन को विभूषित करोगे।''

इस प्रकार भगवान के आदेशानुसार ध्रुव वन से राजमहल लौट आया। माता-पिता सहित सभी परिजनों व राजकर्मियों ने ध्रुव का अभिनंदन किया। माता सुनीति ने अपने पुत्र को हृदय से लगा लिया और सौतेली माँ सुरुचि ने भी उसे आशीर्वाद दिया। ध्रुव का अर्थ ही होता है अटल, स्थिर, दृढ़ निश्चयी या जिसको अपनी जगह से हटाया न जा सके। सचमुच ध्रुव ने अपने नाम को पूरी तरह से सार्थक किया। अपने अटल, स्थिर और दृढ़ निश्चय से उसने अपने लक्ष्य को प्राप्त किया।

इस कथा से हमें यह प्रेरणा मिलती है कि यदि ध्रुव की तरह हमारा निश्चय दृढ़ हो, अटल हो, अडिग हो तब जीवन के हर क्षेत्र में हमारी सफलता सुनिश्चित है। फिर चाहे हम विद्यार्थी हों, अध्यापक हों, किसान हों, अभिनेता हों, नेता हों अथवा साधक हों—हमें लक्ष्य-प्राप्ति होने तक पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। चाहे कितनी भी मुश्किलें आएँ, कठिनाइयाँ आएँ, हमें अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होना चाहिए। यदि हम ऐसा कर सके तो एक दिन हमें सफलता अवश्य मिलेगी। ❑

एक राजा आखेट पर निकला। मार्ग भटक जाने के कारण रास्ता भूलकर एक वनवासी की झोंपड़ी में पहुँचा। उसने राजा को भोजन कराया-जल पिलाया व सही मार्ग तक पहुँचाया। राजा ने उस पर प्रसन्न होकर उसे चंदन का एक उपवन उपहार में दे दिया। वनवासी उस उपवन को पाकर प्रसन्न तो हुआ, पर उसे ये ही नहीं पता था कि चंदन की लकड़ियों का मोल क्या है ? सो उसने उसकी लकड़ियाँ काटकर, उनका कोयला बनाकर बेचना आरंभ किया।

इस उपक्रम से गुजारे की व्यवस्थामात्र बन जाती थी। धीरे-धीरे सारा बाग समाप्त हो गया। अंतिम पेड़ की लकड़ियों को काटकर निकला तो एक चंदन का व्यापारी मार्ग में मिल गया। उसने उसे लकड़ियों के उस गट्ठर का मूल्य स्वर्णमुद्राओं में चुकाया। अब उस व्यक्ति को चंदन का असली मूल्य पता चला, पर अब तक बहुत देर हो चुकी थी। मनुष्य को भी मानवीय जीवन के रूप में ऐसा ही उपहार मिला है—जब तक वह उसका सही मूल्य समझ पाता है, बहुत देर हो जाती है। समय रहते जाग पड़ना ही श्रेष्ठ है।

पुरुषार्थ चतुष्टय

पुरुषार्थ चतुष्टय भारतीय धर्म, दर्शन व संस्कृति की आधारशिला है। पुरुषार्थ चतुष्टय भारत के महान ऋषियों द्वारा सृजित व प्रदत्त एक सिद्धांत है जिसे अपनाने पर मनुष्य जीवन भौतिक व आध्यात्मिक, दोनों ही दृष्टि से संतुलित व पूर्ण होता है और मनुष्य का जीवन सुख, शांति, समृद्धि व आनंद से भर जाता है।

पुरुषार्थ चतुष्टय क्या है? 'पुरुषार्थ' शब्द दो शब्दों से बना है—पुरुष एवं अर्थ। यहाँ पुरुष का अर्थ है—विवेकशील प्राणी (मनुष्य) तथा अर्थ का तात्पर्य है—लक्ष्य। इस प्रकार विवेकशील प्राणी के लक्ष्य को पुरुषार्थ कहते हैं। 'चतुष्टय' शब्द का अर्थ है—चार की संख्या अथवा चार चीजों का समूह। इस प्रकार विवेकशील प्राणी (मनुष्य) के चार लक्ष्यों को पुरुषार्थ चतुष्टय कहते हैं।

भारतीय ऋषियों, मनीषियों ने मनुष्य के लिए मुख्यत: चार लक्ष्य निर्धारित किए हैं, इसलिए इसे पुरुषार्थ चतुष्टय कहते हैं। ये चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म क्या है? संपूर्ण भारतीय ज्ञान-परंपरा में 'धर्म' शब्द के विविध अर्थ तथा उसके स्वरूप पर विचार किया गया है। प्राय: नीति, कर्त्तव्य, आचरण, स्वभाव, कर्म—ये शब्द धर्म के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

शब्दकोश के अनुसार 'धर्म' शब्द की उत्पत्ति 'धृ' धातु से हुई है और 'धृ' का अर्थ है—धारण करने योग्य। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जिसको धारण किया जाए अथवा जो धारण करने योग्य है, वही धर्म है।

यहाँ धारण करने या अपनाने से तात्पर्य उन गुणों को धारण या अपनाने से है, जिन्हें धारण कर लेने पर, जिन्हें अपना लेने पर जीवन ऊँचा उठता है और मनुष्य का व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और पारलौकिक जीवन सुख-शांति, समृद्धि-संतुष्टि-तृप्ति और आनंद से ओत-प्रोत हो उठता है।

अब पुन: प्रश्न यह उठता है कि वे गुण कौन से हैं, जिन्हें धारण कर लेने या अपना लेने पर मनुष्य का जीवन सुख-शांति-समृद्धि व आनंद से आप्लावित हो उठता है। उन गुणों को प्रकाशित करते हुए मनुस्मृति (6.92) में कहा गया है—

धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

अर्थात धैर्य, क्षमा, संयम, चोरी न करना, शौच (बहिरंग व अंतरंग की स्वच्छता-पवित्रता), इंद्रियों को वश में रखना, विवेक बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना—ये दस लक्षण धर्म के बताए गए हैं।

ये ऐसे सद्गुण हैं, जो व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र के सर्वांगीण विकास, सुख, समृद्धि और आनंद के लिए आवश्यक हैं, जो मनुष्य इन सद्गुणों को धारण किए हुए है, अपनाए हुए है, आत्मसात् किए हुए है, वास्तव में वही सच्चा मनुष्य है, वही श्रेष्ठ मनुष्य है, वही धार्मिक मनुष्य है और ऐसा व्यक्ति कभी भी हिंसा, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, दुराचार, अनाचार, बेईमानी, झूठ आदि बुरे कर्मों में लिप्त नहीं होता। वह कभी भी सच्चाई और ईमानदारी से विमुख नहीं होता।

वह व्यक्ति परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य व दायित्वों का निर्वाह बड़ी ही ईमानदारी, सच्चाई, जिम्मेदारी, समझदारी और बहादुरी के साथ करता है।

धर्म हमारा मानवीय स्वभाव है, कर्त्तव्य है। हर वस्तु का, प्राणी का अपना धर्म होता है, गुण होता है, स्वभाव होता है। जैसे सूर्य का स्वभाव उसकी ऊष्मा, तपन व प्रकाश में दिखता है तो चंद्रमा का स्वभाव उसकी चाँदनी में, शीतलता में, प्रकाश में दिखता है।

जल का स्वभाव है बहना, वायु का स्वभाव है बहना। अग्नि में ऊष्मा है और वही उसका धर्म है, वही उसका स्वभाव है। वैसे ही मनुष्य में मनुष्यता (मानवीय गुणों) का होना ही उसका धर्म है, स्वभाव है। जिस मनुष्य में मनुष्यता नहीं अर्थात करुणा, प्रेम, संवेदना, सत्य, क्षमा आदि सद्गुण न हों, वह मनुष्य कैसा!

पूज्य गुरुदेव ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जो मनुष्य को संयमी, संवेदनशील और श्रेष्ठ बनाए, वही धर्म है और जो उसे असंयमी, संवेदनहीन और भोगवादी बनाए, वही अधर्म है।

पूज्य गुरुदेव के अनुसार धर्म के मुख्यत: तीन अंग हैं—नैतिकता, आस्तिकता और आध्यात्मिकता। नैतिकता धर्म का प्रथम अंग है। नैतिकता ही हमें उचित-अनुचित की पहचान कराती है और हमेशा उचित कार्य करने को प्रेरित करती है। व्यक्ति को अपने आप को कुछ नियमों से, नीतियों से आबद्ध करना पड़ता है, जिससे स्वयं के साथ-साथ दूसरों का भी अहित न हो।

हमारे आचरण से किसी को कष्ट न हो, यही नैतिकता है। धर्म का द्वितीय अंग है—आस्तिकता। आस्तिकता अर्थात स्वयं पर विश्वास। आस्तिकता से ही व्यक्ति को स्वयं पर पूर्ण विश्वास होता है। उसे अपनी क्षमताओं पर विश्वास होता है, जिसके कारण उसमें आत्मविश्वास व आत्मबल का जागरण होता है।

आस्तिकता ही मनुष्य में प्रतिभा-जागरण का मूल केंद्र भी है—जिसका स्वयं पर भरोसा नहीं, विश्वास नहीं, वह ऊँचा नहीं उठ सकता है। वह जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता है। अस्तु आस्तिकता धर्म का एक अनिवार्य अंग है।

'आध्यात्मिकता' धर्म का तृतीय अंग है। अध्यात्म, धर्म का प्राणतत्त्व है। अध्यात्म ही धर्म की आत्मा है। मनुष्य में सत्य, प्रेम, करुणा व भाव-संवेदना की प्रगाढ़ता ही आध्यात्मिकता है और ऐसी आध्यात्मिकता ही धार्मिकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म नैतिकता, आस्तिकता व आध्यात्मिकता का समुच्चय है।

नैतिकता, आस्तिकता व आध्यात्मिकता का सम्मिलित रूप ही धर्म है। हमें भी अपने भीतर नैतिकता, आस्तिकता और आध्यात्मिकता को विकसित कर सही माने में धार्मिक बनने और सुख-शांति-समृद्धि-मुक्ति व आनंद प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। 'अर्थ' द्वितीय पुरुषार्थ है। अर्थ शब्द का अभिप्राय है—अभिलाषित वस्तु। कृषि, वाणिज्य, व्यवसाय आदि द्वारा द्रव्यों का अर्जन कर ऐहिक उन्नति करना। यही अर्थ का तात्पर्य है।

अर्थ, द्रव्य तथा धन समानार्थी शब्द हैं। व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक स्तर पर अर्थ (धन) के द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए व्यक्ति जीवनयापन करता है। अर्थ वह वस्तु है, जिस पर मनुष्य की जीविका चलती है। यह भौतिक सुख-साधन की प्राप्ति का मूलभूत स्रोत है।

जीवन जीने के लिए आवश्यक प्रत्येक वस्तु के लिए अर्थ आवश्यक है। अत: अर्थोपार्जन करना

आवश्यक है। अर्थ का उद्देश्य केवल व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं तथा समृद्धि की पूर्ति करना ही नहीं है, अपितु दान, परोपकार, समाज-कल्याण तथा धार्मिक कृत्यों आदि के लिए भी अर्थ की महत्ता समान रूप से है।

भर्तृहरि ने अपने ग्रंथ नीतिशतक—5 में अर्थ की महत्ता को लेकर कहा है—**धनात् धर्मः ततः सुखम्** अर्थात धन से धर्म और धर्म से सुख मिलता है। निष्कर्ष यह है कि अर्थ भौतिक उन्नति का साक्षात् साधन है, पर अर्थ का उपार्जन यदि धर्मयुक्त नहीं है और उसे गलत तरीके से, भ्रष्टाचार, बेईमानी आदि अनुचित तरीके से अर्जित किया जाता है, तब वह अर्थ—अनर्थ का कारण बनता है, व्यक्ति के पतन का कारण बनता है; व्यक्ति के दुःख का कारण बनता है। अर्थोपार्जन का साधन भी पवित्र अर्थात धर्मयुक्त होना चाहिए।

'काम' तृतीय पुरुषार्थ है। काम क्या है? **काम्यते इति कामः**। अर्थात विषय और इंद्रियों के संपर्क से उत्पन्न होने वाली इच्छा ही काम है। संसार के सुख-भोगों को भोगने की इच्छापूर्ति का दूसरा नाम काम है।

कामना, इच्छा, आकांक्षा, लालसा, अभिलाषा आदि ये सारे शब्द काम नामक तत्त्व की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं, पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि काम अर्थात कामनाओं, इच्छाओं की पूर्ति भी धर्मयुक्त ही होनी चाहिए। अनुचित तरीके से अपनी इच्छाओं की पूर्ति नहीं की जानी चाहिए, वरन धर्मानुसार ही 'काम' नामक पुरुषार्थ का सेवन करना चाहिए।

कामनाओं, इच्छाओं की पूर्ति अथवा उसके अर्जन का साधन भी उपयुक्त होना चाहिए, धर्मयुक्त होना चाहिए, न्याययुक्त होना चाहिए अन्यथा अन्यायपूर्ण, अनीतिपूर्ण, अधर्मपूर्वक कामनाओं की पूर्ति करना भी मनुष्य के दुःख, पतन, पराभव व विनाश का कारण बनता है। महाभारत शांतिपर्व—123.15 में भी कहा है कि धर्म और अर्थ के विरुद्ध काम का सेवन बुद्धि के नाश का कारण बनता है। भागवतपुराण—11.21.24 के अनुसार काम की अत्यधिक आसक्ति व्यक्ति को उसके लक्ष्य से भ्रष्ट कर देती है।

'मोक्ष' चतुर्थ पुरुषार्थ है। मोक्ष के विषय में कहा गया है—**'मुच्यते सर्वेर्दुःखबंधनैर्यत्र स मोक्षः'**। अर्थात जिस पद अथवा अवस्था को पाकर जीव समस्त दुःख एवं बंधनों से मुक्त हो जाता है, वह मोक्ष है।

सांसारिक बंधनों व दुःखों से मुक्ति ही मोक्ष है। बंधन परतंत्रता का सूचक है। मोक्ष स्वतंत्रता है। मोक्ष जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। अतः इसे परम पुरुषार्थ भी कहते हैं।

निःश्रेयस, कैवल्य, अपवर्ग, मुक्ति, निर्वाण, स्वरूप स्थिति, स्थितप्रज्ञता, स्वोपलब्धि, परमपद, परमपुरुषार्थ आदि मोक्ष के समानार्थक शब्द हैं। वस्तुतः 'मोक्ष' का आशय 'मुक्ति' से है, पर प्रश्न यह उठता है कि किसकी मुक्ति और किससे मुक्ति? 'मुक्ति' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'मुच' धातु से हुई है। 'मुच' धातु का प्रयोग छूटने के अर्थ में किया जाता है। इस प्रकार मोक्ष अथवा मुक्ति का आशय छूटने से है।

जीव का जन्म और मरण के बंधन से छूट जाना ही मोक्ष है। मोह का क्षय हो जाना ही मोक्ष है। अज्ञान से मुक्ति ही मोक्ष है। यहाँ पर मुक्ति (मोक्ष) का अर्थ जीवात्मा का समस्त दुःखों तथा बंधनों से छूटकर अपने शुद्धस्वरूप में स्थित होने से किया गया है।

भारतीय दर्शन में इस बात पर सहमति है कि मनुष्य केवल भौतिक शरीर मात्र का पुंज नहीं है, अपितु उसमें ईश्वर का अंश रूप आत्मा भी है, जो शाश्वत, सनातन, अजन्मा, अमर और अविनाशी है।

शरीर के मारे जाने पर भी आत्मा नहीं मरती। आत्मा शरीर, मन और इंद्रियों से भिन्न है, परंतु अज्ञानता के कारण जीवात्मा शरीर, इंद्रिय और मन

से अपनी पृथकता नहीं समझ पाती है। अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाने से जीवात्मा को बंधन होता है।

बंधन के कारण जीवात्मा के जन्म-मरण की शृंखला चलती रहती है। आचार्य शंकर का मत है कि आत्मा का शरीर और मन में अपनेपन का संबंध होना ही बंधन है। आत्मा का शरीर के साथ आसक्त हो जाना ही बंधन है।

आत्मा शरीर से भिन्न है, फिर भी वह शरीर की अनुभूतियों को निजी अनुभूतियाँ समझने लगती है। यही बंधन है। आत्मा स्वभावत: नित्य, शुद्ध, चैतन्य, मुक्त और अविनाशी है, परंतु अज्ञान के वशीभूत होकर वह बंधनग्रस्त हो जाती है।

जीवात्मा में जब तक ज्ञान (आत्मज्ञान) का उदय नहीं होगा, तब तक उसे दु:ख और बंधन में ही रहना होगा। अज्ञान का अंत ज्ञान से ही संभव है।

जीवात्मा को अपने वास्तविक स्वरूप (ब्रह्मस्वरूप) का ज्ञान ही मोक्ष है। मोक्ष की प्राप्ति से संसार में कोई परिवर्तन नहीं होता, पर जीवात्मा का जगत् के प्रति, संसार के प्रति जो दृष्टिकोण है वह परिवर्तित हो जाता है।

जगत् को, संसार को देखने का उसका नजरिया बदल जाता है; क्योंकि अब वह जगत् को आत्मदृष्टि से देखती है, ब्रह्मदृष्टि से देखती है, ब्रह्मभाव से देखती है और तदनुरूप लोकव्यवहार करती है। हर स्थिति, परिस्थिति में वह समभाव, समत्व व सुख-दु:ख से परे आनंद की स्थिति में रहती है।

मोक्ष की अवस्था में जीवात्मा को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। अस्तु मोक्ष किसी नई वस्तु की प्राप्ति नहीं, बल्कि जो पहले से है, उसी की प्राप्ति है। यह स्पष्ट है कि अज्ञानजनित बंधन ही सारे दु:खों का कारण है और इस बंधन का अंत ज्ञानजनित मोक्ष से ही संभव है।

सभी सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर अपने आत्मस्वरूप में स्थित रहने को, ईश्वर अर्थात सर्वोच्च सत्ता के साथ नित्य संबंध स्थापित कर लेने को मोक्ष कहते हैं। शरीरधारी मोक्षप्राप्त व्यक्ति को स्थितप्रज्ञ, जीवनमुक्त कहते हैं। मोक्षप्राप्ति मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है इसलिए इस पुरुषार्थ को सर्वश्रेष्ठ व आनंदमय माना गया है। गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग—ये तीन मोक्षप्राप्ति के साधन बताए गए हैं।

पुरुषार्थ चतुष्टय के संबंध में हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि प्रथम तीन (धर्म, अर्थ, काम) मनुष्य के अभ्युदय के साधन हैं तथा अंतिम मोक्ष अर्थात मुक्ति परमानंद का साधन है। भारतीय मनीषियों के अनुसार शरीर तथा आत्मा का घनिष्ठ संबंध है। शरीर भौतिक है तथा आत्मा आध्यात्मिक है।

शुभ कार्यों के लिए हर दिन शुभ और अशुभ कार्यों के लिए हर दिन अशुभ है।

धर्म, अर्थ, काम—ये मनुष्य के भौतिक सुखों के साधन हैं। ये तीनों एकदूसरे के पूरक हैं। शरीर में रहने के कारण जीवात्मा काम अर्थात सुखोपभोग को जीवन का प्रथम लक्ष्य मानती है। सुखोपभोग के लिए अर्थ (धन) की आवश्यकता होती है। यह अर्थप्राप्ति सदैव धर्मपूर्वक होनी चाहिए, पर अर्थ और काम से प्राप्त सुख भी क्षय होने वाले हैं।

एकमात्र मोक्ष ही है, जिससे प्राप्त होने वाला सुख नित्य होता है। इसकी प्राप्ति होने पर दु:ख तथा असंतुष्टि का सदैव के लिए नाश हो जाता है। इसलिए मोक्ष नामक अंतिम पुरुषार्थ को परम पुरुषार्थ माना गया है। वर्ग चतुष्टय का महत्त्व तभी है, जब मनुष्य इनका पालन एकांगी रूप में न करके सर्वांगीण रूप में करे। अत: एकांगी अर्थात पृथक-पृथक रूप में नहीं, बल्कि सर्वांगीण रूप में इन चारों की महत्ता है। ❑

पवित्र नदियों में स्नान का महत्त्व

गंगा, क्षिप्रा, सिंधु हों या ब्रह्मपुत्र, गोदावरी, यमुना—नदियों में स्नान करना पुण्यदायी कर्म माना गया है। यह परंपरा युगों से चली आ रही है। अनेकों परिवर्तन हुए, लेकिन पवित्र नदियों, सरोवरों में स्नान करने की परंपरा खंडित नहीं हुई। अँगरेजों ने इसे एक अंधविश्वास कहा और इसकी आलोचनाएँ कीं, लेकिन भारतीयों के हृदय में सदियों से चली आ रही इस परंपरा को तोड़ा नहीं जा सका।

भारतीय ऋषियों, मुनियों, संतों, ब्राह्मणों ने पवित्र नदियों में जाकर स्नान करने को महत्त्व क्यों दिया? यह प्रश्न अवश्य उठता है, आज की पढ़ी-लिखी वैज्ञानिक पीढ़ी यह जानना चाहती है कि तीर्थों और पवित्र नदियों व सरोवरों में स्नान क्यों किए जाते हैं?

नदी जब अपने स्रोतों—पहाड़ों, वनों, सरोवरों, ग्लेशियरों से निकलती है, तब प्राय: संकरी होती है। मार्ग में इसमें अनेक जलधाराएँ, छोटे-नदी-नाले, सहायक नदियाँ आकर मिलती हैं। इससे नदी में जल-राशि का विस्तार होता है, उसका पाट विशाल होता है। अपनी जीवनयात्रा में मनुष्य को भी इतने व्यापक व खुले दिलो-दिमाग का होना चाहिए कि चारों ओर से जल-राशि की तरह ज्ञान-राशि को अपने में समाता चले।

जीवनयात्रा में दो सबल अस्तित्वों का मिलन मानो संगम तीर्थ के समान पवित्र हो जाता है। नदी को सागर-पत्नी भी कहा गया है। इसी तरह समुद्र के भी अनेक नामों में से एक है—सरित्पति। सभी नदियाँ अंतत: समुद्र में ही समा जाती हैं। नदियाँ समुद्र तट पर उपजाऊ पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करती हैं।

नदियों के किनारे ही हमारी आरंभिक सभ्यताएँ फली-फूली हैं। विभिन्न इलाकों व वहाँ तट पर बसे लोगों की पहचान उन नदियों के नाम से हुई। भारत के महान वैज्ञानिक ग्रंथ उपनिषदों में प्रत्येक वस्तु के सूक्ष्मरूपों का विश्लेषण है। इस संबंध में छांदोग्य उपनिषद् की एक घटना है—श्वेतुकेतु को उसके पिता आरुणि उपदेश देते हुए कहते हैं कि खाए हुए अन्न का अत्यंत स्थूल भाग मल हो जाता है, मध्य भाग मांस और अत्यंत सूक्ष्म भाग मन का निर्माण करता है।

इसी प्रकार जो जल ग्रहण किया जाता है, उसका स्थूलभाग मूत्र बनता है, मध्य भाग व सूक्ष्म भाग से प्राण बनता है। यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि जल के सूक्ष्मभाग वाष्प द्वारा बड़ी-बड़ी मशीनें तक चलाई जाती हैं। इसी प्रकार हमारे शरीर के जलीय भाग या अंश का सूक्ष्मतम रूप प्राण है और जल को प्राणमय बताया गया है अर्थात जल से प्राणमय ऊर्जा का निर्माण होता है।

आयुर्वेद के ग्रंथों में जल का शोधपूर्ण वर्णन किया गया है। आयुर्वेद के महान वैज्ञानिक आचार्य आत्रेय के शिष्य हरित ने अपनी हारीत संहिता में देश की संपूर्ण नदियों के जल पर शोध के क्रम में हिमालय पर्वत से उत्पन्न नदियों के जल को इस प्रकार वर्णित किया कि हिमालय से निकली नदियाँ पवित्र हैं, देव ऋषियों से सेवित हैं, भारी पत्थर और बालुका से युक्त बहने वाली हैं। उनका जल निर्मल, वात-कफनाशक है, श्रमनिवारक, शोथ नाशक, किंचित् पित्तनाशक तथा पित्त और त्रिदोष को शांत करने वाला है। इस प्रकार हिमालय से निकलने वाली सभी नदियाँ गुणों में समान हैं।

900 छोटी-बड़ी नदियों से मिलकर हिमालयीय जड़ी-बूटियों से ओत-प्रोत होने के कारण गंगा बनी है। इसी प्रकार आत्रेय ने चर्मण्यवती, वेत्रवती, पासवती, क्षिप्रा, महानदी, शैवालिनी व सिंधु इन नदियों का जल, वात, पित्त, कफनाशक, त्रिदोषनाशक, श्रमहारक, ग्लानि निवारक एवं वीर्यवर्द्धक बताया है।

नर्मदा के जल को भी अत्यंत पवित्र कहा है। यह जल घन, शीतल, पित्तनाशक, कफकारक, वात विकार निवारक तथा हृदय के लिए हितकारी होता है।

इन पवित्र नदियों के जल में स्नान व आचमन करने का मात्र यही उद्देश्य है कि पवित्र व गुणकारी जल प्राणों को शुद्ध करे और उसके दोषों का निवारण करे। इससे हमारा प्राण बलशाली हो जाता है।

जल का सूक्ष्मरूप प्राण होने के कारण नदियों के जल में जो गुण है, वह हमारे प्राणों में आ जाता है और हमारे प्राणों को शुद्ध करता है। यही कारण है कि देश के महान ऋषियों ने इन पवित्र नदियों के किनारे उद्गम स्थल और पवित्र क्षेत्रों में, आश्रमों की स्थापना कर आध्यात्मिक पवित्र विचारों को प्रसारित किया है।

दिव्य भारतीय ऋषियों के यह संकल्प व कार्य इतने पवित्र हुए कि पूरी दुनिया में यह स्थान तीर्थरूप में प्रसिद्ध हो गए और इन पवित्र नदियों, सरोवरों में स्नान करने का महत्त्व जन-जन ने स्वीकार किया। आयुर्वेद में सामान्य स्नान करने के विषय में लिखा है कि स्नान करने से शरीर में पवित्रता उत्पन्न होती है। आयु में वृद्धि होती है, बाल बढ़ते हैं, केश और तेज की वृद्धि होती है, रति का श्रम नाश होता है एवं शक्ति उत्पन्न होती है।

नदियाँ तो परम पवित्र होती हैं। जो व्यक्ति इन नदियों में स्नान से वंचित रहते हैं, उन्हें आरोग्य के लिए विविध स्नानों से जोड़ा गया है। इसी प्रकार स्नान की कई प्रकार की प्रयोग-विधियाँ हैं; जैसे अगर, मुलेठी, आँवले को मलकर स्नान करने से कफ और तिमिर का नाश होता है।

काले तिलों को मलकर स्नान करने से नेत्रों की दृष्टि बढ़ती है और वात शमन होता है। इसीलिए मानवमात्र को अपने प्राणों को शक्तिशाली बनाने के लिए पर्वों पर तीर्थ सेवन की परंपरा है। देश की पवित्र जड़ी-बूटियों से युक्त नदियों के किनारों पर कुंभ और सिंहस्थ आयोजन व कल्पवास का विधान भी इसी कारण से है।

उज्जैन की क्षिप्रा नदी के जल में ज्वर का नाश करने के गुण समाहित हैं। उसी प्रकार नर्मदा नदी का जल निर्मल, शीतल, हलका, पित्त व कफ की शांति करने वाला और सभी प्रकार के दोषों का नाश करने वाला है।

सदुपयुञ्जते ये तु सौभाग्यं प्रस्तुतं क्रमात्।
उद्गच्छन्ति तथा यान्ति पूर्णतां लक्ष्यगां सदा॥

अर्थात जो प्रस्तुत सौभाग्य का सदुपयोग करते हैं, वे ही ऊँचे उठते हैं और पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचते हैं।

आज नदियों को प्रदूषित कर उनके गुणकारी जल को अशुद्ध किया जा रहा है, जिसके कारण इनका जल भी बीमारियाँ फैला रहा है। देश के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि लोकहित में इन नदियों को प्रदूषित न करे।

पवित्र नदियाँ जिन शहरों, गाँवों, कस्बों से होकर बहती हैं। वहाँ के निवासितों का यह दायित्व है कि उनमें गंदगी न बहाकर उन्हें प्रदूषित होने से बचाएँ। आज विभिन्न नदियों का प्रदूषण स्तर अत्यंत चिंताजनक है। आने वाले दिनों में यदि नदियों के पानी को शुद्ध करने का प्रयास नहीं किया गया तो नए-नए रोगों की उत्पत्ति से प्राण संकट में पड़ने लगेंगे। ❑

स्वस्थ-संतुलित जीवनशैली के स्वर्णिम सूत्र

आधुनिक जीवन के वरदानों के साथ जुड़ा एक अभिशाप है बिगड़ती जीवनशैली; जिसके चलते तमाम तरह की शारीरिक-मानसिक विसंगतियाँ पैदा हो रही हैं एवं व्यक्ति नाना प्रकार के मनोकायिक रोगों से ग्रस्त हो रहा है।

मधुमेह, उच्च रक्तचाप, मोटापा, हृदय रोग जैसी समस्याएँ बचपन से अपना शिकंजा कसने लगी हैं। युवा इसके चलते अपनी पूरी क्षमता से परिचित नहीं हो पा रहे हैं और उनका यौवन सृजन के बजाय निराशा और अवसाद के शिकंजे में दम तोड़ने लगा है।

जीवनशैली क्या है? इसके प्रमुख आयाम क्या हैं? इतना समझ आ जाए तो फिर एक संतुलित जीवनशैली के सर्वसामान्य सूत्रों को अपनाते हुए इन विसंगतियों से बचा जा सकता है और एक स्वस्थ, सुखी एवं सफल जीवन की नींव रखी जा सकती है। जीवनशैली के मुख्यतः चार आयाम हैं—आहार, विहार, विचार एवं व्यवहार।

आहार—हलका एवं पौष्टिक ही उचित है। सही भूख लगने पर ही भोजन करना आधारभूत नियम है। जब-तब खाते रहना, नियमित भोजन के अलावा कई बार नाश्ता कर लेना, किसी भी तरह से विवेकसंगत नहीं है। भोजन स्थिर चित्त होकर शांत मन से ईश्वर को स्मरण करते हुए करें।

'जैसा अन्न—वैसा मन' की उक्ति के अनुसार भोजन से शरीर का ही नहीं, मन एवं आत्मा का भी पोषण होता है। शास्त्रों में ऋतभुक्, मितभुक्, हितभुक् के रूप में आहार का नियम दिया गया है। ऋतभुक् अर्थात मौसम के अनुरूप प्राकृतिक भोजन का सेवन करें।

मितभुक् अर्थात जितना आवश्यक हो, उतना खाएँ, मिताहारी बनें। हितभुक् अर्थात ऐसा भोजन करें, जो शरीर के लिए अनुकूल व हितकारी हो। एक स्वस्थ जीवन के लिए उचित आहार के साथ श्रम एवं व्यायाम का अनुपान भी आवश्यक है। यथासंभव शारीरिक श्रम को भी महत्त्व देना आवश्यक है।

यदि समय हो तो लिफ्ट के बजाय सीढ़ियाँ चढ़कर जाएँ। आस-पास परिसर या बाजार में स्कूटर के बजाय साइकल से जाएँ या पैदल चलें। अपनी आयु और समय-क्षमता के अनुरूप नित्य भ्रमण, कसरत या आसन-व्यायाम का न्यूनतम क्रम निर्धारित किया जा सकता है। साथ में उचित नींद-विश्राम का ध्यान रखें।

औसतन नींद के 6-8 घंटे पर्याप्त होते हैं, जिसके बाद व्यक्ति तरोताजा अनुभव करता है। इसके लिए रात को कंप्यूटर, गैजट्स व टीवी के अनावश्यक प्रयोग से बचें। यह शारीरिक स्वास्थ्य और नीरोगिता का सर्वसामान्य कार्यक्रम है, जिसके आधार पर व्यक्ति स्वस्थ रहते हुए जीवन का आनंद उठा सकता है।

जीवनशैली का दूसरा आयाम है—**विहार**। विहार का अर्थ है सुबह उठने से लेकर रात्रि शयन तक की जीवनचर्या। समय पर शयन और समय पर प्रातःजागरण, इसका पहला स्वर्णिम सूत्र है। सुबह जागते ही, अपने जीवनलक्ष्य व इष्ट-आदर्श का स्मरण करते हुए दिनचर्या का शुभारंभ करें फिर दिनभर के कार्यों का निर्धारण, इनको प्राथमिकताओं के आधार पर अंजाम देने की चुस्त-दुरुस्त व्यवस्था।

इस तरह व्यवस्थित, अनुशासित दिनचर्या जहाँ एक ओर कर्त्तव्यपालन का संतोष देती है, तो वहीं दूसरी ओर अपने कार्यक्षेत्र एवं सामाजिक जीवन में सफलता का मार्ग प्रशस्त करती है। इसके साथ दिन भर का संग-साथ माने रखता है; क्योंकि व्यक्ति का संग-साथ उसके सोच व व्यवहार को प्रभावित करता है। अत: सकारात्मक एवं प्रेरक संग भी वांछनीय है।

आज के विषाक्तता से भरे टीवी, इंटरनेट, सिनेमा एवं मोबाइल युग में सात्त्विक, प्रेरक एवं लक्ष्य को पोषित करने वाला संग-साथ महत्त्वपूर्ण है। ऐसे संग-साथ से दूर ही रहें, जो मन को दूषित करता हो, कर्मों को कलुषित करता हो और हृदय को दुर्भावनाओं से भरता हो।

दिनचर्या में प्रार्थना, जप-ध्यान, स्वाध्याय आदि का समावेश जीवन में सकारात्मक विचारों का संचार करता है, जो प्रतिकूल परिस्थिति में भी व्यक्ति को स्वस्थ-संतुलित रखता है। इस तरह अनुशासित आहार-विहार के आधार पर आत्मविश्वासयुक्त आशाभरी मन:स्थिति का निर्माण होता है, जिसके बल पर सकारात्मक एवं प्रभावी व्यवहार संभव हो पाता है।

एक स्वस्थ जीवनशैली का तीसरा आयाम है—**शालीन एवं सहकार-सहयोगयुक्त व्यवहार।** वाणी, व्यवहार की मुख्य संवाहक है। महापुरुषों द्वारा दिया गया वाणी का स्वर्णिम सूत्र है—मित, मधुर और कल्याणी।

वाणी ऐसी हो, जिससे किसी की भावना आहत न हो, जिससे सबका कल्याण हो। व्यवहार में उदारता, सहिष्णुता का समावेश निश्चित रूप से व्यक्तित्व को भावप्रवण बनाता है और चारों ओर सहयोग-सहकार भरे सुख-शांतिपूर्ण वातावरण का सृजन करता है। कहावत भी प्रख्यात है कि शालीनता बिना मोल मिलती है, लेकिन इससे सब कुछ खरीदा जा सकता है।

जीवनशैली का चौथा आयाम है—**विचार;** जो सबसे सूक्ष्म और महत्त्वपूर्ण पक्ष है। विचारों की शक्ति सर्वविदित है। विचार ही क्रमश: कर्म बनते हैं, जो आदतों के रूप में चरित्र का निर्माण करते हैं और व्यक्ति के भाग्य का निर्धारण करते हैं। सो विचारों की शक्ति का सही नियोजन महत्त्वपूर्ण है। विचारों का श्रेष्ठ, सकारात्मक और विवेकसंगत होना अभीष्ट है।

इसके लिए अपने आदर्श का स्मरण, सत्संग एवं सुदृढ़ धारणा आवश्यक है। मस्तिष्क को हम जितने श्रेष्ठ एवं आदर्श विचारों से भरते रहेंगे, वे उतने ही महान एवं श्रेष्ठ कार्यों को अंजाम देते रहेंगे। विचारों को सकारात्मक एवं उत्कृष्ट बनाए रखने में स्वाध्याय का अपना एक विशेष महत्त्व रहता है।

इसके साथ व्यापक एवं गहन अध्ययन बौद्धिक विकास को सुनिश्चित करता है। लेखन के रूप में विचारों की रचनात्मक अभिव्यक्ति मौलिक सोच को पुष्ट करती है और सृजन का आनंद देती है।

इसी के साथ सामाजिक जीवन में एक प्रभावी एवं सृजनात्मक संचार का मार्ग प्रशस्त होता है। इसके साथ मस्तिष्क का लक्ष्य के प्रति केंद्रित होना महत्त्वपूर्ण है, जिससे अपना कैरियर एवं जीवन लक्ष्य प्राप्त हो सके।

इस तरह जीवनशैली के चार आयाम—आहार, विहार, विचार और व्यवहार का उचित पोषण एवं ध्यान जीवनशैली से जुड़े विकारों से रक्षा करता है और व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित करता है।

अत: हर समझदार व्यक्ति को एक स्वस्थ एवं संतुलित जीवनशैली को अपनाने का कार्यक्रम अवश्य बनाना चाहिए एवं संतुलित जीवनशैली के इन स्वर्णिम सूत्रों को अपनाना चाहिए। ❑

तनाव प्रबंधन

दैनिक जीवन में तनाव का आना स्वाभाविक है। जब व्यक्ति किसी चुनौतीपूर्ण परिस्थिति का सामना करता है तो 'फाइट' या 'फ्लाइट' (लड़ो या भागो) की स्थिति आती है, जिसमें शरीर से ऐसे जैविक रसायन स्रवित होते हैं, जो व्यक्ति को इसका सामना करने के लिए तैयार करते हैं। व्यक्ति परिस्थिति से निपटने के लिए आवश्यक तत्परता, जुझारूपन और एकाग्रता से युक्त होता है।

इस तरह तनाव किसी चुनौती, खतरे या दबाव की स्थिति में शरीर व मन की प्रतिक्रिया है, जो सकारात्मक या नकारात्मक हो सकती है। अत: तनाव जीवन का एक सहायक तत्त्व है, लेकिन जब यह तनाव किसी कारणवश लंबे समय तक बना रहता है तो यह तन-मन के लिए हानिकारक साबित होता है और शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डालता है।

इस तरह तनाव के दो प्रकार हैं—सकारात्मक, जो हमें चुनौतियों से जूझने में सहायता करता है, इसे यूस्ट्रेस कहते हैं, दूसरा है नकारात्मक अर्थात डिस्ट्रेस, जो हानि पहुँचाता है।

तनाव के लक्षण—नकारात्मक तनाव के लक्षण तन, मन एवं व्यवहार में विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं। तनाव शरीर में थकान, मांसपेशियों में तनाव, तेज धड़कन, उच्च रक्तचाप, सिरदरद, कब्ज, दस्त जैसी पेट की समस्याओं के रूप में प्रकट होता है। ये तनाव फिर मानसिक रूप से चिंता, उद्विग्नता, स्मरणशक्ति एवं एकाग्रता में कमी, उदासी आदि के रूप में व्यक्त होता है।

नींद न आना या अधिक सोना, क्रोध, खीझ, चिड़चिड़ाहट, सामाजिक रूप से अलग-थलग पड़ना आदि तनाव के व्यावहारिक लक्षण हैं। लंबे समय तक संचित तनाव के कारण हृदय विकार, उच्च रक्तचाप, माइग्रेन, पेट के अल्सर, बार-बार कब्ज या दस्त, अनिद्रा, अस्थमा और सिरदरद जैसी मनोकायिक समस्याएँ पनपती हैं। इनके साथ व्यक्ति की जीवन की चुनौतियों से जूझने और सामना करने की क्षमता चुकने लगती है। व्यक्ति बहुत जल्द थक जाता है और हताश-निराश हो जाता है।

तनाव के कारण—जीवन में तनाव के कई कारण हो सकते हैं, जो परिस्थितिजन्य, मन:स्थितिजन्य और जीवनशैली से जुड़े हो सकते हैं। इनमें कई परिस्थितियाँ भारी तनाव का कारण बनती हैं, जैसे—किसी प्रिय का बिछड़ना, मृत्यु, तलाक, सेवानिवृत्ति, आर्थिक तंगी, बेरोजगारी, जीर्ण रोग, पारिवारिक झगड़े, आपसी कलह आदि। अचानक मिली कोई बड़ी उपलब्धि, धनलाभ, शादी, समारोह, सफलता आदि भी परिस्थितिजन्य तनाव का कारण बनते हैं।

ये तनाव समय के साथ स्वयं ही शांत हो जाते हैं। हालाँकि इनमें अपनों का सहयोग महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है और व्यक्ति अपनी सूझ, परिपक्वता एवं मनोबल के आधार पर इनसे स्वयं भी निपट लेता है।

मन:स्थिति एवं जीवनशैलीजन्य तनाव—परिस्थिति के अतिरिक्त अधिकांश तनाव व्यक्ति की बिगड़ी जीवनचर्या, असंयमित आहार-विहार,

नकारात्मक सोच एवं अवांछनीय व्यवहार के कारण पैदा होते हैं।

नियमित आत्मनिरीक्षण के साथ जीवन में व्याप्त हो रहे ऐसे तनाव का प्रबंधन इनके मूल में सक्रिय कारणों को खोजकर, रचनात्मक ढंग से किया जा सकता है।

इसी पृष्ठभूमि में तनाव प्रबंधन के सूत्र हैं—जीवनशैली प्रबंधन—संतुलित आहार, नियमित व्यायाम एवं श्रम, पर्याप्त नींद, नशा या दुर्व्यसन से दूरी, व्यवस्थित दिनचर्या के आधार पर तनाव का प्रभावी प्रबंधन किया जा सकता है।

मोबाइल का संयमित एवं अनुशासित प्रयोग भी इसमें सहायक रहता है; क्योंकि इसका अधिक उपयोग तनाव का एक बड़ा कारण बनता है। साथ ही सकारात्मक विचारशैली का अभ्यास भी जरूरी है।

इसके लिए श्रेष्ठ पुस्तकों को पढ़ें, आध्यात्मिक महापुरुषों का सत्संग करें और मन को लक्ष्य केंद्रित रखें तथा इसे श्रेष्ठ विचारों से ओत-प्रोत रखने का प्रयास करें। मानसिक विश्रांति के अभ्यास—योगासन, गहरा श्वास, शिथिलीकरण, शांत-मधुर संगीत, ध्यान आदि के अभ्यास के साथ मन को शांत-स्थिर करते हुए तनाव का गहराई से प्रबंधन किया जा सकता है।

प्रकृति के बीच समय बिताना भी सहयोगी रहता है। साथ ही नियमित रूप से स्वाध्याय करें, प्राप्त सूत्रों पर चिंतन-मनन करते हुए जीवन में धारण करने का प्रयास करें। आत्मनिरीक्षण को जीवन का अभिन्न अंग बनाएँ। रोज इनके लिए कुछ समय निकालें। नियमित रूप से किया गया डायरी लेखन मन के तनाव को हलका करने का एक प्रभावी उपाय रहता है।

सामाजिक एवं भावनात्मक उपाय भी अपनाने चाहिए, जैसे दूसरों के साथ जुड़ें, शुभचिंतकों के साथ संवाद करें, न कहना सीखें, जिसे नियंत्रित कर सकते हैं—उस पर ध्यान दें, कृतज्ञता और सकारात्मक चिंतन का अभ्यास करें; सबके साथ विनम्रता, शालीनतापूर्वक व्यवहार करें तथा बड़ों को सम्मान दें, छोटों को स्नेह-प्यार दें।

अपने सहपाठियों के साथ मिल-जुलकर रहें। अपने व्यवहार एवं वाणी को बिगड़ने न दें, अपनी गरिमा बनाए रखें। ये सब अभ्यास तनाव प्रबंधन में सहायक रहते हैं।

इसके साथ अपने कर्तव्यों का पूरी तत्परता के साथ पालन एवं दैनिक कार्यों का प्राथमिकता के आधार पर निपटारा तनाव को पास फटकने नहीं देता।

मल्टीटास्किंग से बचें—एक साथ कई काम हाथ में लेने से भी तनाव आता है, अतः ऐसा करने से बचें, एक समय में एक ही काम करें। अति महत्त्वाकांक्षा से बचें। अपने मौलिक लक्ष्य को पहचानें। अपनी क्षमता के अनुसार धीरे-धीरे आगे बढ़ें और छोटे-छोटे कदमों को बढ़ाते हुए बड़ा लक्ष्य हासिल करें।

दूसरों से अनावश्यक प्रतियोगिता एवं प्रतिद्वंद्विता से बचें। ईर्ष्या-द्वेष, निंदा-चुगली आदि से दूर रहें। इस तरह यदि हम आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि एवं स्वस्थ-संतुलित जीवनशैली को अपनाते हैं तो कठिन-से-कठिन तनावपूर्ण परिस्थिति से बाहर निकल सकते हैं और इसका रचनात्मक उपयोग कर सकते हैं।

महाभारत के रणक्षेत्र में तनावग्रस्त अर्जुन इसी आधार पर भगवान श्रीकृष्ण के सान्निध्य में विषाद को योग में बदलते हैं। इस रूप में यदि तनाव का समुचित नियोजन किया जा सके, तो तनाव एक वरदान भी सिद्ध होता है।

तनाव चेतावनी लेकर आता है, चिंता नहीं—यदि हमें समय पर चेतावनी न मिले तो हम जीवन के बहुमूल्य अवसर खो देंगे और जीवन हमें जो विभूतियाँ देना चाहता है, उनसे वंचित रह जाएँगे।

इस तरह जीवन में जागरूकता पैदा करना तनाव का पहला अमूल्य वरदान रहता है।

तनाव के क्षण हमारे शरीर व मन को संपूर्ण रूप से सक्रिय कर देते हैं—परीक्षा के समय हमारी सक्रियता बढ़ जाती है, मन पूरी तरह से लक्ष्य केंद्रित हो जाता है। समय की पाबंदी बढ़ जाती है। शरीर ऊर्जावान तथा मन बहुत सक्रिय हो जाता है और जीवन में तनाव का सकारात्मक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। समस्या के समाधान के लिए संपूर्ण तत्परता भी जरूरी है।

तनाव को जब हम सकारात्मक रूप में लेते हैं तो तन, मन और अंतरात्मा की ऊर्जा समस्या के समाधान की ओर लग जाती है, हमारे जीवन की दिशा समाधान की ओर अग्रसर रहती है और हम संपूर्ण तत्परता के साथ समस्याओं का समाधान कर पाते हैं। ❑

आवश्यक सूचना

1. कोई भी संदेश (फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप) व्यक्तिगत न भेजें, न कोई धनराशि व्यक्तिगत भेजें। व्यक्तिगत संदेश एवं भेजी गई धनराशि पर कार्रवाई करना संभव न होगा। केवल संस्थागत फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप पर ही संदेश एवं राशि भेजें।
2. सभी पत्र व्यवहार, ई-मेल, व्हाट्सएप संदेश में अपना पूरा नाम, पता, पिनकोड, मेल आई.डी., मोबाइल नंबर, व्हाट्सएप नंबर का उल्लेख अवश्य करें, ताकि त्वरित कार्रवाई की जा सके।
3. अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि पर्याप्त दूरी पर हैं। अतः संदेश अलग-अलग पतों पर ही भेजें। संयुक्त संदेश, धनराशि भेजने से कार्रवाई में विलंब होता है।
4. राशि भेजने के पश्चात जमापर्ची के साथ पूरा संदेश भेजें, ताकि समायोजन हो सके।
5. अब रजिस्टर्ड सेवा डाक विभाग द्वारा बंद कर दी गई है। जब भी अखण्ड ज्योति न पहुँचे, तुरंत सूचित करें। दोबारा भिजवाने की व्यवस्था की जाएगी।

पता—अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा (उ.प्र.), 281 003
फोन—(0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449, मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039, व्हाट्सएप नं. 9927086290,
Email-akhand jyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

वीरता देती है गौरव

यह बात केवल भावुकता नहीं, बल्कि ऐतिहासिक सच्चाई है कि जहाँ अन्याय और अत्याचार छाए हों, वहाँ केवल बहादुरी ही आशा और विजय का प्रतीक बनती है। जब संकटों से घिरी मानवता को नया रास्ता दिखाना हो, तब एक सच्चा वीर ही समाज को दिशा देता है। यह वीरता केवल युद्धभूमि पर तलवार चलाने की नहीं, बल्कि नीति, धर्म और आत्मबल की होती है।

सच्ची वीरता का अर्थ है—दूसरों के कल्याण के लिए अपने सुखों का त्याग करना। वीर वह नहीं, जो स्वार्थ के लिए लड़े, बल्कि वह है, जो न्याय और सत्य के लिए खड़ा हो। इतिहास गवाह है कि कायरों की कोई स्मृति नहीं होती, वे केवल नामहीन रह जाते हैं। समाज और संस्कृति की प्रगति केवल उन्हीं के द्वारा संभव होती है, जो अपने स्वार्थों की बलि देकर जनहित में कदम उठाते हैं।

न्याय के लिए लड़ने वाला, नीति पर डटा रहने वाला, सत्य की राह पर अकेले चलने वाला ही सच्चा वीर कहलाता है। नीतिवान वीर वह होता है, जो क्षणिक लाभ या हानि से डिगे नहीं। एक सच्चा वीर वह होता है, जो दुर्गुणों से जूझे, विकृतियों से लड़े, आत्मबल से समाज को दिशा दे। सेवा, सदाचार, त्याग, संयम जैसे गुणों को जीवन में उतारकर, जो अपने व्यक्तित्व से समाज को प्रेरणा दे, वही समाज में श्रेय और सम्मान का अधिकारी होता है।

भीष्म ने अपने संकल्प के लिए जीवन भर ब्रह्मचर्य निभाया। माँ सीता ने भगवान राम की मर्यादा के लिए अग्नि परीक्षा दी। बुद्ध ने अपना साम्राज्य त्यागकर मानवता की सेवा को चुना। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि सच्चा शौर्य केवल युद्ध में नहीं, आत्मनियंत्रण और परमार्थ में है।

सम्मान वीरों को ही मिलता है, पर केवल तलवार के बल से नहीं, बल्कि अपने आचरण, संकल्प, सेवा और नीति के बल से। जो कर्त्तव्य को पूजा समझते हैं, जो समाज की भलाई के लिए स्वयं को अर्पित कर देते हैं—वे ही सच्चे अर्थों में श्रद्धा और सम्मान के अधिकारी होते हैं। ❑

प्रज्ञावतार की दिव्य सत्ता ही प्रमुख है और इन दिनों वही युग-परिवर्तन के सरंजाम जुटा रही है तो भी समग्र कर्तृत्व वहाँ उसे अकेले नहीं करना है। सेनापति अकेला नहीं लड़ता, सैनिक भी साथ चलते हैं। हाथ अकेला पुरुषार्थ नहीं करता, दस उँगलियाँ व चौबीस पोर भी अपनी क्षमता के अनुरूप अपने ढंग से उस कर्म कौशल में जुड़े रहते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

सफलता के लिए आवश्यक है अनुशासन

विचार, बीज की तरह होते हैं। जैसे बीज बोने के बाद सिंचाई और देख-भाल से वे फल देते हैं, वैसे ही विचारों को व्यवहार में उतारना आवश्यक होता है। केवल विचार करना काफी नहीं, उन्हें कर्म में बदलना भी जरूरी है। यह तब ही संभव है, जब व्यक्ति आत्मविश्वास और धैर्यपूर्वक अपने लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ता रहे।

कई बार लोग अच्छे विचार तो रखते हैं, लेकिन आलस्य, निराशा या असमर्थता के कारण उन्हें अमल में नहीं ला पाते। परिणामस्वरूप, जीवन दिशाहीन हो जाता है। संकल्पविहीनता और अनुशासनहीनता से कोई भी सफलता नहीं मिल सकती। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति संकल्प को दृढ़ करे और निरंतर प्रयास करता रहे।

सफलता एक दिन में नहीं मिलती। यह एक सतत प्रक्रिया है, जिसमें मनोबल, योजनाबद्ध कार्य और समय का सही उपयोग जरूरी होता है। संकल्प तभी सार्थक होता है, जब वह लगातार अभ्यास और क्रियान्वयन से जुड़ा हो। अंततः सफलता का रहस्य किसी चमत्कार में नहीं, बल्कि नियमित और सकारात्मक प्रयत्नों में छिपा होता है। इसके लिए धैर्य, तप, साधना और निरंतरता अनिवार्य है।

मन की आदतें ही जीवन की दिशा तय करती हैं। यदि कोई व्यक्ति बार-बार संकल्प तो लेता है, पर उसे निभा नहीं पाता, तो यह उसकी अनुशासनहीनता को दरसाता है। बिना अपने स्वभाव को बदले, कोई महान कार्य संभव नहीं हो सकता। चाहे वह विद्या, कला, साधना, सेवा या आत्मविकास ही क्यों न हो—हर क्षेत्र में सफलता के लिए मानसिक अनुशासन आवश्यक है।

बहुत से लोग योजनाएँ तो बनाते हैं, पर आलस्य या आत्मसंयम की कमी के कारण उन्हें क्रियान्वित नहीं कर पाते। जब कोई व्यक्ति बार-बार प्रयास करता है, लेकिन भीतर से खुद को बदल नहीं पाता, तो उसके सारे प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं।

यथार्थ यह है कि कठिनाई के बावजूद, हर कोई कुछ-न-कुछ कर सकता है। चुनौतियाँ सभी के सामने आती हैं, लेकिन जो लोग उन्हें दृढ़ संकल्प और निरंतर प्रयास से पार करते हैं, वही वास्तव में सफल होते हैं। जब भी कोई कार्य कठिन लगे, तो यह सोचना चाहिए कि यह मेरे आत्मविकास का अवसर है।

बहाने बनाना बहुत आसान होता है—कभी समय की कमी, कभी संसाधनों की, कभी परिवार की जिम्मेदारियों की, लेकिन सच्चाई यह है कि जिन लोगों ने जीवन में बड़ा कार्य किया है, उन्होंने इन्हीं सीमाओं के भीतर रहकर अपना श्रेष्ठ प्रदर्शन किया है।

प्रत्येक महान सफलता के पीछे होता है—मन का परिश्रम, निरंतर अभ्यास, असफलताओं से सीख और आत्मविजय। हमें अपने संकल्प को बार-बार दोहराना होगा और आलस्य, डर, हीनता जैसी मानसिक बाधाओं को छोड़ना होगा। अंत में यदि हम अपने जीवन में स्थायी और सार्थक परिवर्तन लाना चाहते हैं तो शुरुआत हमें अपने मन से करनी होगी।

मन का प्रशिक्षण, विचारों की स्पष्टता और छोटे-छोटे कार्यों में अनुशासन ही हमें महान उपलब्धियों की ओर ले जा सकते हैं। ❑

पर्यावरण प्रदूषण के मध्य समग्र विकास की राह

विकास समय की माँग है। इसके लिए तमाम तरह के सरकारी से लेकर गैर-सरकारी प्रयास चल रहे हैं, जो समतुल्य हैं और इनके साथ देश प्रगति-पथ पर अग्रसर हो रहा है। कई पैमानों पर भारत विश्व के अग्रणी देशों की पंक्ति में शुमार हो चुका है, लेकिन स्थिति का सम्यक मूल्यांकन करने पर इसमें कुछ विसंगतियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं, जिन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक हो जाता है।

इन पर कार्य किया जाना समय की माँग है; क्योंकि इनका सीधा संबंध मानवीय अस्तित्व से है, जो किसी भी तरह के एकतरफा विकास से अधिक महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि विकास की सार्थकता तभी तक है, जब तक मानव का अस्तित्व सुरक्षित एवं संरक्षित है। अस्तित्व के साथ खिलवाड़ करते विकास के अधिक माने नहीं रह जाते। इनमें जल प्रदूषण एक है।

जिस जल को जीवन कहा जाता है, उसकी देश में स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं कही जा सकती। देश की सबसे पावन नदी गंगा जी की स्थिति से सभी परिचित हैं। दशकों से अरबों रुपये इसमें पानी की तरह बहाए जा चुके हैं, लेकिन इसकी शुद्धता एवं निर्मलता को हम सुनिश्चित नहीं कर पाए हैं।

इसके उद्गमस्थल से ही इसके प्रदूषण की दरद भरी अमानवीय कथा प्रारंभ हो जाती है। दिल्ली में यमुना जी की दुर्दशा हमारे विकास के मानकों पर गहरे प्रश्नचिह्न लगाती है, जिसका हमारे पास कोई उत्तर नहीं है।

देश की लुप्त होती व दूषित होती अधिकांश नदियाँ उद्धार के लिए अपने-अपने क्षेत्रों से भगीरथों की प्रतीक्षा में हैं। जमीन के नीचे के गिरते जल स्तर व इसके प्रदूषण की स्थिति भी चिंताजनक है। कई क्षेत्रों में यह दूषित जल खतरनाक रसायनों से संक्रमित है, जो अपंगता से लेकर कैंसर जैसी घातक बीमारियों का कारण बन रहा है।

वायु-प्रदूषण एक अन्य समस्या है। देश में वायु की स्थिति खतरे की तमाम सीमाओं को पार कर रही है। राजधानी दिल्ली में वायु की शुद्धता का मानक एक्यूआई 500 के आँकड़े पार कर रहा है और औसतन 400 के ऊपर रहता है। दिल्ली के आस-पास के एनसीआर क्षेत्र में भी स्थिति भयावह है। देश के विभिन्न प्रांतों की अधिकांश राजधानियों व बड़े शहरों में स्थिति चिंताजनक बनी हुई है।

राजधानी में आपातस्थिति घोषित कर छुट्टियाँ घोषित करनी पड़ रही हैं। चिकित्सक फेफड़ों के मरीजों को राजधानी छोड़कर किसी सुरक्षित स्थान पर जाने की सलाह दे रहे हैं।

देश के कई क्षेत्रों में फैक्टरियाँ निर्बाध रूप से धुएँ का उत्सर्जन करती रहती हैं, जिसमें घुटन से लेकर बदबू से भरी स्थिति में रहने के लिए स्थानीय लोग विवश हैं। किन मानकों के आधार पर ये ऐसा विषाक्त व हानिकारक धुआँ छोड़ रही हैं, इन पर जाँच की आवश्यकता है व इसके लिए जिम्मेदार सभी लोगों को जवाब तलब किए जाने की आवश्यकता है।

जनजीवन की कीमत पर मुट्ठीभर लोगों के लाभ की ये कवायद किसी भी रूप में एक न्याय

आधारित समाज व्यवस्था पर गंभीर प्रश्नचिह्न लगाती है और लचर एवं अदूरदर्शी प्रशासनिक व्यवस्था को दुरुस्त करने की तत्काल माँग करती है।

मृदा प्रदूषण एक अन्य संकट है। रासायनिक खेती के साथ कीटनाशकों का धड़ल्ले के साथ हो रहा उपयोग जहाँ मिट्टी में जहर घोल रहा है, इसको विषाक्त कर रहा है, वहीं इसमें उपज रहे फल, शाक-सब्जी व अन्न को भी विषाक्त कर रहा है—जो पशुओं के भोजन में शामिल होकर उनके दूध व मांस को विषाक्त कर रहा है।

सब मिलकर उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रहा है। हम जाने-अनजाने में ऐसा दूषित व विषाक्त आहार लेने के लिए विवश हैं। कम-से-कम श्रम में अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाने की वृत्ति इसके मूल में सक्रिय दिखती है, जो कुछ लोगों को तात्कालिक लाभ तो देती है, लेकिन दीर्घकाल में व्यापक जनसमूह के लिए भयावह स्वास्थ्य संकट का कारण बनती है।

इससे भी दो कदम आगे बिना किसी श्रम के नकली दूध, नकली घी, नकली मसाले व नकली खाद्य पदार्थों के निर्माण की कुत्सित चेष्टा आए दिन समाचारों की सुर्खी बनती है—जो भोले-भाले उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य एवं जीवन के साथ खिलवाड़ कर रही है, जो किसी अपराध से कम नहीं। इसका सीधा संबंध मानवीय अंधस्वार्थ एवं अत्यधिक लोभ से विकृत होती मानसिक दशा से है। हर तरह के प्रदूषणों का उद्गम-स्रोत वैचारिक प्रदूषण प्रतीत होता है।

जो लोभ व भ्रष्टाचार के रूप में विभिन्न प्रकार के पर्यावरण प्रदूषण का कारण बन रहा है। यही अपराध, हिंसा, ईर्ष्या-द्वेष, आतंक, संघर्ष एवं युद्धों के रूप में व्यापक स्तर पर देश एवं विश्व के कोनों में असुरक्षा एवं आतंक का वातावरण बनाए हुए है। यही वैचारिक प्रदूषण व्यक्ति को असुरक्षा, तनाव, अवसाद एवं भय की घुटनभरी मनोदशा में जीने के लिए बाध्य किए हुए है।

यही वैचारिक प्रदूषण प्रकृति के साथ दोहन, शोषण एवं अत्याचार का कारण बन रहा है, जिसकी प्रतिक्रिया प्रकृति-प्रकोप के रूप में प्रकट हो रही है। एक तरफ अत्यधिक गरमी व सूखा तो दूसरी ओर अत्यधिक सरदी जनजीवन को दूभर कर रही है।

मानसून के मौसम में प्रकृति का तांडव प्रलयंकारी बाढ़ के रूप में अस्तित्व का संकट बन कर सामने आ रहा है। वर्ष—2025 के बरसाती मौसम में जम्मू-कश्मीर से लेकर हिमाचल एवं उत्तराखंड में बादल फटने के साथ विनाशकारी बाढ़ एक गंभीर संकट के रूप में सामने आई थी। पहाड़ों में बाढ़ की स्थिति का विकराल प्रभाव मैदानों में प्रयागराज से लेकर बनारस एवं राजधानी दिल्ली तक देखा गया था।

ये वो पल थे, जब प्रभावित लोगों का अस्तित्व दाँव पर लग गया था और सोचने के लिए मजबूर कर रहा था कि हमारा विकास किस दिशा में आगे बढ़ रहा है। जिस तरह से हमने प्रकृति के पंचतत्त्वों के साथ खिलवाड़ किया है, इनका दोहन-शोषण किया है—वह विकास के नाम पर अधिक देर तक नहीं चल सकता है।

सीमा के बाद प्रकृति का पलटवार तय है, जिसका सामना हम सबको करना होगा। विकास की अंधी दौड़ में विनाश के इस निमंत्रण से यह स्पष्ट हो चला है कि इस तरह का विकास प्रकृति से कटकर हुआ है। साथ ही हम अपने सांस्कृतिक मूल्यों को भी विस्मृत कर बैठे हैं, जो प्रकृति को पूज्य मानती रही है व इसके साथ तालमेल के साथ कार्य करने की हिदायत देती है।

अतः आवश्यकता प्रकृति के प्रति अपने भाव को बदलने की है, अपनी सांस्कृतिक जड़ों से

जुड़ने की है, तभी हम सही माने में उस विकास को सुनिश्चित कर पाएँगे, जहाँ खुशहाली के साथ शांति-सुकून भी होगा।

हम संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा घोषित सतत विकास के तय मानकों पर भले ही तेजी से प्रगति कर रहे हों, लेकिन धरातल पर अभी बहुत कार्य शेष है। इसके लिए सरकारी प्रयासों के साथ गैर-सरकारी प्रयासों को और तीव्र करने की आवश्यकता है। हर जागरूक नागरिक का कर्तव्य बनता है कि वह प्रकृति एवं संस्कृति से जुड़कर सतत विकास के मानकों को पूरा करने में अपने स्तर पर योगदान दे और विकसित भारत के स्वप्न को साकार करने की दिशा में अपनी भावपूर्ण आहुति दे। ❑

एक राजा ने अपने मंत्रियों से प्रश्न किया कि किसी कार्य को करने के लिए सबसे उपयुक्त समय कौन-सा है? मंत्रियों ने अपनी समझ के अनुसार उत्तर दिए, परंतु राजा उनसे संतुष्ट नहीं हुआ तो अंततः महामंत्री उसे कुलगुरु के पास लेकर गए।

राजा ने कुलगुरु से यही प्रश्न किया—उस समय कुलगुरु विद्यार्थियों को पढ़ा रहे थे, वे पढ़ाते रहे और राजा की ओर देखा भी नहीं। राजा निराश होकर लौट आया। अगले दिन पुनः राजा ने ऐसा ही प्रश्न किया—उस समय कुलगुरु पौधों की निराई-गुड़ाई कर रहे थे और वही करते रहे।

तीसरे दिन राजा पहुँचे तो कुलगुरु शांत बैठे थे। राजा ने उनसे प्रश्न किया तो वे बोले—"राजन्! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो मैंने प्रथम दिन ही दे दिया था। तुम व्यर्थ ही भटक रहे हो।"

राजा कुतूहल में पड़े तो कुलगुरु बोले—"राजन्! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है कि जब तुम्हारे सामने जो दायित्व आ गया हो, वही कार्य को करने का सर्वश्रेष्ठ समय है।

आध्यात्मिक प्रवाह में वैज्ञानिक दृष्टिकोण

सामान्य जीवन का एक बड़ा भाग अंधविश्वास और रूढ़ियों से आच्छादित रहा है। साधारण व्यक्ति या निरक्षर जनता प्राकृतिक घटनाओं को समझने में असमर्थ होकर, उन्हें अलौकिक शक्तियों से जोड़ देती है। यही कारण है कि साधारण बीमारियों या आपदाओं को भी देवताओं का कोप मान लिया जाता है, किंतु विज्ञान की दृष्टि से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक घटना का एक निश्चित कारण होता है, जिसे समझने और सुधारने का प्रयास किया जा सकता है।

मनुष्य यदि अज्ञान और अंधविश्वासों के बंधन से मुक्त होकर विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाए तो वह न केवल अपने जीवन की समस्याओं का समाधान खोज सकता है, बल्कि समाज के लिए भी उपयोगी बन सकता है। आँधी-तूफान, बिजली गिरना, अकाल, महामारी आदि घटनाएँ प्राकृतिक नियमों के अंतर्गत घटित होती हैं। यदि उनका वैज्ञानिक विवेचन किया जाए तो उनसे बचाव और समाधान दोनों संभव है। यही स्थिति पारिवारिक और सामाजिक जीवन पर भी लागू होती है।

असंतुलित जीवनशैली, असंयमित आचरण और अशिक्षा से अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। इनका हल ढूँढ़ने के लिए आध्यात्मिकता और विज्ञान, दोनों का समन्वित दृष्टिकोण आवश्यक है। आध्यात्मिकता हमें जीवन का उद्देश्य और दिशा देती है, जबकि विज्ञान हमें साधन और उपाय प्रदान करता है। आज का युग वैज्ञानिक उपलब्धियों का युग है।

चिकित्सा, संचार, उद्योग, कृषि और परिवहन जैसे प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान ने असंभव को संभव बना दिया है, किंतु इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि विज्ञान का उपयोग मानव-कल्याण और नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए हो। केवल भौतिक सुख-सुविधाओं की वृद्धि ही प्रगति नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक संतुलन और नैतिक संवेदनशीलता के साथ जीवन जीना ही सच्ची उन्नति है। प्रयत्नशील मनुष्य ही अपनी परिस्थितियों को बदल सकता है।

प्राचीन अंधविश्वासों और असत्य धारणाओं से चिपके रहना समाज को पीछे धकेलने जैसा है। आवश्यकता इस बात की है कि हम विज्ञान और अध्यात्म को विरोधी न मानकर, परस्पर पूरक रूप में देखें। विज्ञान हमें साधन देता है और अध्यात्म उन साधनों के सही उपयोग की मर्यादा।

इसी समन्वित दृष्टिकोण से न केवल व्यक्ति, बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र—सभी का कल्याण संभव है। विज्ञान और अध्यात्म का संगम ही वह प्रकाश है, जो मानव जीवन को नई दिशा और संतुलन प्रदान करता है। विज्ञान ने अब तक अनेक प्रयोग और अनुसंधान किए हैं।

भौतिक क्षेत्र में उसकी सीमाएँ निश्चित रूप से हैं, परंतु आध्यात्मिक उपायों के प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता। प्रार्थना, ध्यान और श्रद्धा—ये सब केवल मनगढ़ंत बातें नहीं हैं, बल्कि इनके परिणाम भी देखे गए हैं। जब व्यक्ति सच्चे मन से विश्वास करता है तो उसके भीतर अद्भुत शक्ति जाग्रत होती है, जिससे उसका जीवन और व्यक्तित्व दोनों प्रभावित होते हैं।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र भी यह मानता है कि मनुष्य की मानसिक स्थिति उसके शारीरिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालती है। उदाहरण के लिए आशावादी और शांत चित्त व्यक्ति की रोग प्रतिरोधक क्षमता प्राय: अधिक होती है; जबकि नकारात्मक सोच और निराशा से ग्रस्त व्यक्ति रोगों का अधिक शिकार बन जाता है।

यही कारण है कि चिकित्सा पद्धतियों में आजकल 'साइकोसोमेटिक मेडिसिन, मनोचिकित्सा' और 'काय चिकित्सा' जैसे उपचार प्रचलित हो रहे हैं, जहाँ मन और शरीर, दोनों को संतुलित करने का प्रयास किया जाता है।

विभिन्न अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि प्राणायाम, ध्यान और योगाभ्यास का शरीर और मन, दोनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिकों ने यह पाया कि नियमित साधना से रक्त संचार सुधरता है, हृदय और फेफड़े स्वस्थ रहते हैं, मानसिक शांति मिलती है तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है। इसीलिए विश्व के अनेक देशों में योग को स्वास्थ्य का वैज्ञानिक उपाय माना जाने लगा है।

भारत में भी कई अनुसंधान संस्थानों ने योग और ध्यान पर व्यापक प्रयोग किए हैं। काशी हिंदू विश्वविद्यालय, देव संस्कृति विश्वविद्यालय तथा अन्य केंद्रों पर हुए अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ कि ध्यान की स्थिति में मस्तिष्क तरंगें नियंत्रित होती हैं और शरीर की आंतरिक प्रणालियाँ सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करती हैं।

इसी प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करने से रक्तचाप नियंत्रित होता है और मानसिक तनाव में भी कमी आती है। स्पष्ट है कि अध्यात्म और विज्ञान का संगम मानव जीवन के लिए एक वरदान है।

विज्ञान जहाँ साधनों और प्रयोगों के माध्यम से सत्य की खोज करता है, वहीं अध्यात्म जीवन को उद्देश्य और दिशा प्रदान करता है। यदि दोनों को संतुलित रूप से अपनाया जाए तो मानव समाज न केवल भौतिक रूप से प्रगतिशील हो सकता है, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी संपन्न हो सकता है। ❑

एक राजा को मन में तीव्र कामना भर आई कि वह विश्वविजेता बने। उसने युद्ध के लिए अनुचित माध्यमों से धन एकत्रित करना आरंभ कर दिया। प्रजा पर मनमाने कर लगा दिए व अधीनस्थ कर्मचारियों को व्यर्थ परेशान करना शुरू कर दिया। उसके अत्याचारों के समाचार कुलगुरु तक पहुँचे तो वे उससे मिलने पहुँचे व बोले—"तात! दूसरों को जीतने से बेहतर है कि स्वयं को जीतो। स्वयं को जीतने का अर्थ है—मन को जीतना। यदि वह वासना की ओर झुके तो उसे संयम में निरत करो, वह लोभ करे तो उसे जीवन की नश्वरता दिखाओ। दूसरों पर अभिमान दिखाने से अच्छा है कि सीधी-सरल राह चलो। तभी तुम संसार के सच्चे विजेता बन सकते हो।"

राजा को कुलगुरु की सीख समझ आ गई।

ज्ञान की अलख कैसे जगे ?

शिक्षक-धर्म शिक्षा के साथ जुड़ा हुआ पावन पेशा है, जो एक ओर विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास की व्यवस्था जुटाता है, तो दूसरी ओर समाज एवं राष्ट्रनिर्माण के लिए उन्हें तैयार करता है। इस प्रक्रिया में विद्यार्थियों में कई गुण, कौशल एवं विशेषताओं को उभारा व निखारा जाता है, जिनमें एक है विद्यानुराग।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत इस पर पर्याप्त बल दिया गया है, जिसमें छात्र-छात्राओं को जीवनपर्यंत विद्यार्थी अर्थात विद्यानुरागी बनने के लिए प्रेरित करने की बात की गई है। इस परिणाम को 'लाइफ लोंग लर्निंग' के रूप में परिभाषित किया गया है, जिससे विद्यार्थी जीवनभर अपने ज्ञान के क्षेत्र में व अपने जीवन में नित्य कुछ नया सीखते रहें। अपनी योग्यता को निखारते रहें, ज्ञान में वृद्धि करते रहें और एक प्रबुद्ध एवं ज्ञानवान नागरिक के रूप में परिवार, समाज एवं राष्ट्र की सेवा कर सकें।

ऐसे प्रशिक्षित नागरिकों के बल पर ही सकारात्मक वैश्विक परिवर्तन की आश लगाई जा सकती है, जो अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग हों, अपने मानवीय दायित्व के प्रति संवेदनशील हों और चुनौतियों का समुचित समाधान निकालने में सक्षम हों।

ऐसे प्रबुद्ध एवं ज्ञानवान विद्यार्थियों को गढ़ने का दारोमदार ज्ञानवान शिक्षकों के ऊपर है। इस गुरुतर दायित्व को निभाने के लिए शिक्षक को स्वयं भी ज्ञान-पिपासु बनना होगा, 'लाइफ लोंग लर्निंग' का हिस्सा बनना होगा। तभी वह अपने उस शिक्षक-धर्म के साथ न्याय कर पाएगा, जिसकी संकल्पना प्रत्येक वर्ष 5 सितंबर को शिक्षक दिवस के दिन ही की जाती है।

जिसकी दिशा हर वर्ष गुरु पूर्णिमा के दिन प्रकाशित होती है। अपने विषय में ज्ञानवान बनने के लिए शिक्षक को नित्य पुस्तकालय में कुछ घंटे बैठना होगा, अपने विषय की मानक पुस्तकों का प्रमाणक रहना होगा।

इस प्रक्रिया के साथ शिक्षण संस्थान की वह आवश्यकता भी पूर्ण होती है, जिसकी विभिन्न प्रत्यायन संस्थाओं द्वारा शिक्षण संस्थानों से माँग की जाती है कि विद्यार्थियों के साथ शिक्षकों की पुस्तकालय में उपस्थिति कितनी रहती है, वह जिसका मापन फुट फॉल के रूप में किया जाता है।

एक ज्ञान-पिपासु शिक्षक इस प्रक्रिया में नियम के दबाव में नहीं, बल्कि स्वत:स्फूर्त अंत:प्रेरणा से इसका हिस्सा बनता है और महत्त्वपूर्ण पलों को पुस्तकालय में बिताना पसंद करता है, क्योंकि पुस्तकालय उसके लिए पुस्तकों का कोई कैदखाना नहीं, बल्कि विद्या का मंदिर है, जहाँ वह गहन अध्ययन एवं स्वाध्याय के संग ज्ञान-साधना करते हुए जीवन को प्रकाशित करता है और आवश्यक समाधान को उपलब्ध होता है।

पुस्तकों के साथ एक जागरूक शिक्षक समाचारपत्रों एवं पत्रिकाओं का पारायण भी अनिवार्य रूप से करता है, जिससे देश-विदेश में अपने विषय व जीवन से जुड़ी घटनाओं से परिचित हो सके, समयानुकूल रह सके और विद्यार्थियों को कक्षा में नवीनतम जानकारियों,

तथ्यों, आँकड़ों व उदाहरणों के साथ विषय को रोजमर्रा के जीवन से जोड़ते हुए रोचक एवं व्यावहारिक बना सके।

ऐसे में एक प्रबुद्ध शिक्षक विद्यार्थियों में ज्ञान-पिपासा को सहज ही सुलगा लेता है। जीवन के प्रति गंभीर शिक्षक पुस्तकों व समाचारपत्र-पत्रिकाओं के साथ अपने विषय में हो रहे नवीनतम शोध के प्रति भी सजग रहता है।

पुस्तकालय में उपलब्ध शोध-पत्रिकाओं का वह पारायण करता है। साथ ही वहाँ उपलब्ध ऑनलाइन सुविधाओं-संसाधनों को भी खँगालता है और विद्यार्थियों में शोध के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करता है तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं शोध को सुनिश्चित करता है; क्योंकि अंततः समाजोपयोगी शोध एवं ज्ञान ही किसी शिक्षण संस्थान की अमूल्य थाती रहती है।

एक ज्ञानवान शिक्षक विद्यार्थियों को मात्र पुस्तकों व पुस्तकालयों के ज्ञान तक सीमित नहीं रखता। वह उन्हें जीवन व समाज से जुड़ी ज्वलंत समस्याओं के प्रति भी संवेदनशील बनाता है, उन्हें शैक्षणिक भ्रमण के साथ जमीनी स्तर पर समाज की वास्तविकता से रूबरू कराता है और वहाँ की विशेषताओं, विरासत से परिचय करवाते हुए वहाँ की समस्याओं के प्रति भी संवेदित करता है और उनके सम्यक समाधान के लिए प्रेरित करता है।

सर्वोपरि एक आचारवान शिक्षक छात्र-छात्राओं को अपने आचरण से जीवन के उन सूत्रों का पाठ पढ़ाता है, जो पुस्तकों में मात्र काले अक्षर के रूप में अंकित रहते हैं, लेकिन छात्र-छात्राएँ जिनकी यथार्थता एवं सत्य के प्रति जीवंत उदाहरण के अभाव में आस्थावान नहीं हो पाते।

आचार्य की भूमिका में एक शिक्षक इस महती आवश्यकता की पूर्ति करता है और अपने व्यक्तित्व की समर्थ भाषा से उन पाठों को विद्यार्थियों को हृदयंगम कराता है, जो वहाँ अंकित होकर जीवन पर्यंत उनका मार्गदर्शन करते हैं। इस तरह एक शिक्षक अपने शिक्षक-धर्म की गरिमा व गुरुता से परिचित होता है और पूरी ईमानदारी व जिम्मेदारी के साथ इसका निर्वहन करता है।

अपने चिंतन को धरातल पर उतारने में बाधक प्रवाह को वह समझदारी एवं बहादुरी के साथ अपार धैर्य एवं निष्ठा के साथ निपटाता है, पार करता है और एक प्रकाशस्तंभ की भाँति शिक्षा के महत्त्व को छात्र-छात्राओं के हृदय में अंकित कर उन्हें जीवनपर्यंत विद्यार्थी बनने के उद्देश्य को पूरा करता है और उनके सर्वांगीण विकास की आवश्यकता को सुनिश्चित करता है। ❑

स्वामी विवेकानंद से उनके अमेरिकी शिष्य ने पूछा—"धर्म से क्या तात्पर्य है ?" स्वामी जी ने उत्तर दिया—"धर्म का अर्थ है सदाचरण, सज्जनता, संयम, न्याय, करुणा और सेवा। मानवीय प्रकृति में इन तत्त्वों को समाविष्ट रखने के लिए धार्मिक मान्यताओं को मजबूती से पकड़े रहना पड़ता है। मनुष्य जाति की प्रगति उसकी इसी प्रवृत्ति के कारण संभव हो सकी है। यदि व्यक्ति अधार्मिक, अनैतिक एवं उद्धृत मान्यताएँ अपना ले तो उसका ही नहीं, समस्त समाज का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा।"

हमारा युग निर्माण सत्संकल्प-4

संयम का सतत अभ्यास

सत्संकल्प के चतुर्थ सोपान में जीवन व्यवहार के प्रत्यक्ष आयामों के संयमन, शोधन एवं नियोजन की दिव्य प्रक्रियाएँ प्रकट हुई हैं। गागर में सागर की भाँति पूज्य गुरुदेव के ये अठारह सत्संकल्परूपी जीवन सूत्र स्वयमेव महामंत्र की भाँति मानव मात्र के परम उत्कर्ष की व्यावहारिक रीति-नीति को समाहित किए हुए हैं।

प्रत्येक सूत्र की संरचना का सृजन, कुछ ऐसी व्यापकता एवं सूक्ष्मता के साथ किया गया है कि अठारह में से किसी भी एक सूत्र को यदि आत्मसात् कर जीवन में उतार लिया जाए, तो शेष की सार्थकता का समन्वय भी अपने आप हो जाता है तथा एकै साधे, सब सधै—की उक्ति चरितार्थ हो उठती है।

प्रत्येक सूत्र मानवीय जीवन के बहुआयामी सोपानों को जीवन अस्तित्व के यथार्थ केंद्र से जोड़ देने में समर्पित है और जो एक बार अपने जीवन यथार्थ को केंद्र से जुड़ जाने में सक्षम हो जाता है तो फिर उसकी जीवन परिधि में अनायास ही संपूर्ण मानवता के कल्याण की पारमार्थिक धाराएँ प्रस्फुटित होने लगती हैं।

प्रेम, दया, करुणा, त्याग, सेवा, समर्पण, संवेदना जैसे दिव्य गुणों से विभूषित हो ऐसा जीवन धरा-धाम पर 'मनुष्य में देवत्व का उदय' रूपी गुरुवाणी का साकार विग्रह बन प्रकट होता है। इन सूत्रों के अवगाहन एवं मनन की इसी भाव-धारा में विगत तीन सूत्र—सोपानों का चिंतन प्रकट किया गया है।

पूर्व के तीनों सूत्र क्रमशः जीवन को लक्ष्योन्मुख, आदर्शनिष्ठ, सामर्थ्यवान, विकसित एवं परिष्कृत बनाने की पथ-प्रेरणा बाँटते हैं और इसी क्रम में यह चतुर्थ सूत्र संयम, संरक्षण और नियोजन की दिशा में जीवन की गतिशीलता का मार्गदर्शन करता है। गतिशीलता हमारे जीवन के भीतर और बाहर दोनों ओर है, परंतु इसकी दिशा और दशा की जिम्मेदारी हमारी होती है। प्रकृति और परमात्मा का इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं। उन्होंने हमें मनुष्य रूप में अनंत शक्ति, सामर्थ्य, संभावना से युक्त चैतन्य और गतिशील जीवन का उपहार दिया है।

इस अमूल्य जीवन की सार्थकता, सफलता व समग्रता की यात्रा स्वयं हमें पूरी करनी है। इसी मर्म का मार्गदर्शन एवं पाथेय प्रकाश पूज्य गुरुदेव सत्संकल्प के इस चतुर्थ सूत्र में प्रकट करते हैं। उन्हीं की वाणी में यह सूत्र है—**'इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत अभ्यास करेंगे।'** मनुष्य जीवन के संदर्भ में संयम का तात्पर्य है—मन, वचन, कर्म, इच्छा, भावना आदि को वश में रखते हुए विवेकयुक्त व संतुलित जीवन जीना।

परमपूज्य गुरुदेव ने संयम को ही एकमात्र शक्ति-सामर्थ्य का मूलस्रोत कहा है। लौकिक व पारमार्थिक—सभी तरह के जीवन में सफलता का आधार संयम ही कहा गया है। संयम का उद्देश्य है—जीवन क्षमताओं को नष्ट होने से बचाना तथा उनका सदुपयोग करना। प्राचीनकाल से अब तक चले आ रहे शास्त्र, साधना, सिद्धांत, परंपरा आदि में प्रस्तुत जीवनदर्शन में संयम की महत्ता स्वीकार्य रही है।

संयम के मार्ग से ही व्यष्टि-समष्टि के कल्याण एवं उत्कर्ष की सिद्धि की जाती रही है। वेद, उपनिषद्, योग, गीता जैसे दिव्य ग्रंथों में संयम के सिद्धांतों, विचारों, आयामों, विधाओं को व्यापकता से प्रकट किया गया है।

नवयुग के निर्माण में, मिशन के महान लक्ष्य में तथा विश्वमानवता के सर्वोपरि कल्याण में भी संयम की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इन सभी लक्ष्यों की सिद्धि-संयम की साधना से ही संभव हो सकती है। इस युग में संयम की आवश्यकता और अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए ही पूज्य गुरुदेव ने सत्संकल्प में संयम-साधना को महत्त्व दिया है।

वैसे तो संयम के अनेक प्रकार व विचार कहे गए हैं, परंतु देश-काल, परिस्थिति के अनुरूप गुरुदेव ने प्रमुख रूप से चार प्रकार के संयम को युगनिर्माणी अनुशासनों में सम्मिलित किया है। ये चार हैं—इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम।

जीवनचर्या में इन चारों के सतत अभ्यास की अनिवार्यता को भी दरसाया है। इंद्रिय संयम का क्रम इस सूत्र में पहला है। ईश्वर ने मानव शरीर में जीवन-व्यवहार के लिए सभी को दस इंद्रियाँ प्रदान की हैं—पाँच ज्ञानेंद्रियाँ (आँख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा) एवं पाँच कर्मेंद्रियाँ (हाथ, पैर, मुँह, गुदा एवं जननांग)।

इन इंद्रियों के संयम के पश्चात ही अन्य संयमों में गति संभव होती है। इन इंद्रियों के गुणों एवं विशेषताओं के कारण ही जीवन की विकास यात्रा आगे बढ़ती है। प्रत्येक इंद्रिय की अपनी शक्ति-सामर्थ्य है। शास्त्रों में इन्हें देवशक्तियों का प्रतिनिधि मानकर मानवीय शरीर की महत्ता का उल्लेख किया गया है। जैसे आँख का विषय रूप या आकार है और इस इंद्रिय के अधिपति देव स्वयं भगवान सूर्य व अग्नि हैं।

इसी प्रकार कान का विषय शब्द है और देवता आकाश हैं, त्वचा का विषय स्पर्श है व देवता वायु हैं। नाक का विषय गंध और देवता पृथ्वी हैं तथा जिह्वा का विषय रस है और देवता जल हैं।

इसी प्रकार कर्मेंद्रियों की शक्ति-सामर्थ्य भी जीवन-संचालन में सहायक अभिन्न साधन के रूप में विद्यमान है। इन सभी का मूल प्रयोजन जीवन का आनंद और उत्कर्ष है। इस मूल प्रयोजन के मार्ग से भटकने पर ही इंद्रियों को संयमित करने की आवश्यकता होती है। परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार मनुष्य अपने जीवन में निरंतर सुख की खोज करता है।

इस खोज में वह इंद्रियों को साधन बनाकर अपने प्रयास आरंभ करता है व मन और बुद्धि को भी इसी दिशा में नियोजित किए रहता है, परंतु दुर्भाग्य यह है कि इन प्रयासों में उसे सुख के साथ-साथ अनेकों दुःख भी अपने आप मिलने लगते हैं। ऐसे में प्रत्येक जन को यह समझना आवश्यक है कि विषय-भोगों, इंद्रिय, मन, बुद्धि में, संसार और इसके साधन-संसाधनों में मनुष्य को सुख, शांति, आनंद जैसा कुछ मिल ही नहीं सकता।

यहाँ सुख के साथ दुःख भी निश्चित ही आता है। प्रत्येक संसारी सुख के पीछे दुःख की कीमत जुड़ी है। मृगतृष्णा की भाँति संसार में इंद्रियों की शक्ति-सामर्थ्य को दौड़ाकर सुख की खोज का प्रयास करने पर परिणाम में अंततः दुःख, पश्चात्ताप, क्लेश, आसक्ति, पीड़ा, आत्मग्लानि ही हाथ लगती है।

जितनी ज्यादा विषय-भोगों में इंद्रियाँ लिप्त होती हैं, जीवन उतना ज्यादा विनाश और मृत्यु की

ओर बढ़ता जाता है। जीवन की जीवनीशक्ति यों ही नष्ट हो जाती है और मनुष्य रूप में धरती पर आना निरर्थक हो जाता है। वर्तमान की स्थिति यही है कि मनुष्य इंद्रिय-भोगों में प्रवृत्त हो निरंतर स्वयं के लिए दु:ख, कष्ट, परेशानी उत्पन्न करने में लगा है। इस स्थिति को उलटने के लिए इंद्रिय संयम का अभ्यास परम आवश्यक है।

केवल इतना ही करने की आवश्यकता है कि इंद्रियाँ जब विषय-वासना, भोगों की ओर जाएँ तो सावधानीपूर्वक उन्हें रोक लेंवे, सँभाल लेवें। बस, इतने से आत्मसंयम से इंद्रिय संयम की साधना दैनंदिन जीवन की साधना बन जाती है। जीवन में जो भी शक्ति-सामर्थ्य प्राप्त हुई है, वह जीवन के सार्थक उद्देश्य और संपूर्ण जीवनयात्रा के लिए है।

इंद्रिय-भोगों में जीवनीशक्ति का अपव्यय करना स्वयं के जीवन को स्वयं से नष्ट-निरर्थक करना है। अत: ध्यान रखा जाना चाहिए कि आहार शरीर व जीवन की आवश्यकता के लिए लिया जाए, जीभ के रसास्वादन के आनंद के लिए नहीं।

रसना का स्वाद हमारे भोजन को निर्धारित न करे। यदि जीभ को सुस्वाद की आदत लग जाए तो परिणाम रोग ही है। अत: संयमपूर्वक हितकारी आहार ही दिनचर्या का अंग हो, बस, इतना ही करना है। यही बात अन्य सभी इंद्रियों और उनके विषयों पर भी लागू होती है। थोड़े से आत्मसंयम-आत्मानुशासन से इंद्रिय संयम सहज हो जाता है।

इसके लिए ऋषियों की दिव्य मंत्रणा यही है कि

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मन: प्रग्रहमेव च॥
इंद्रियाणि हयानाहुर्विषयाँ स्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिण:॥

—कठोपनिषद्-1.3.3-4

अर्थात यह शरीर एक रथ है, जिस पर बैठने वाला इसका स्वामी आत्मा है। जीवात्मा को यह रथरूपी वाहन अपने परम उत्कर्ष के गंतव्य अर्थात मोक्ष तक पहुँचने के लिए मिला है। दसों इंद्रियाँ इस शरीररूपी रथ के घोड़े हैं।

मन इन इंद्रियरूपी घोड़ों को नियंत्रित करने वाली डोर है। इंद्रियों के घोड़े सांसारिक विषयों की सड़क पर चलते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। मनुष्य की बुद्धि पर विवेक के अंकुश के समान इंद्रियों को विषयों में भटकने से बचाकर आत्मा, इंद्रिय व मन से युक्त भोक्ता रूप जीवात्मा को अपने परम लक्ष्य तक पहुँचाते हैं।

संयम का दूसरा चरण अर्थ संयम का है। शास्त्रों में जीवन-निर्वाह की आवश्यकता के अनुरूप अर्थोपार्जन व संग्रह को तो उचित माना गया है, परंतु शौक, फैशन, फजूलखर्ची, अहंप्रदर्शन, बड़प्पन, मौज-मस्ती के साधन-संसाधन आदि में अर्थ का नियोजन सर्वथा अपव्यय और अहितकारी ही कहा गया है। पूज्य गुरुदेव ने मितव्ययता का आदर्श अपनाए रहने को जीवन-साधना का अभिन्न अंग बनाया है। यह भी एक तरह का तप ही है।

गलत तरीके से अर्थ का उपार्जन और अपव्यय की प्रवृत्ति सारे समाज में व्याप्त दिखाई पड़ती है। नई-नई कुरीतियाँ-दुष्परंपराएँ, फैशन-दिखावे के साजोसामान, खान-पान, विन्यास में स्वच्छता-फूहड़ता जैसी अनेक महामारियों ने मानव समाज को जकड़ लिया है। आर्थिक अपराध के बहुरूप प्रकट हो हर किसी को अपना शिकार बनाने को आतुर हैं। ऐसे में बाह्य नियम-मर्यादा, कानून आदि के उपाय इस महामारी को रोकने के लिए उतने कारगर नहीं हैं, जितना कि संयमरूपी यह आंतरिक उपाय है।

मितव्ययता का संयम न अपनाया जाए तो जीवन की अंत:-बाह्य इंद्रियाँ विषय-भोगों की

लालसा में जीवनीशक्ति को बाह्यजगत् की ओर निरंतर उद्वेलित बनाए रखती हैं। इन इंद्रिय लालसाओं के वशीभूत व्यक्ति येन-केन-प्रकारेण अधिक-से-अधिक अर्थाजन की इच्छा लिए अपने कर्म, आचरण और व्यवहार से पतित व भ्रष्ट होता चला जाता है।

सर्वविदित है कि वर्तमान में भ्रष्टाचार की बढ़ती प्रवृत्तियों ने मानवता को भारी संकट में डाल रखा है। व्यक्ति का आर्थिक स्थिति के आधार पर मूल्यांकन और भेदभाव तथा व्यावसायिक बुद्धि के बढ़ते साम्राज्य ने मिलकर मानवीय संबंधों के प्रत्येक स्तर को खंडित कर औपचारिक व स्वार्थ की बेड़ियों में बाँध दिया है। निस्स्वार्थ, प्रेम, स्नेह, संवेदना, मानवीयता से ओत-प्रोत आत्मीय संबंध मानव आचरण से तिरोहित होते अनुभव किए जा सकते हैं।

व्यक्ति और समाज एक ओर स्वच्छंदता, प्रदर्शन, दिखावा, मौज-मस्ती के साधनों-उपायों को जीवनमूल्य समझने लगा है तो दूसरी ओर एक बड़ा वर्ग कुंठा, आत्महीनता, अपराध, ग्लानि, निराशा के गर्त में जा रहा है। ऐसे में आवश्यकता है आर्थिक दृष्टिकोण को परिवर्तित कर उचित मार्गदर्शन प्रदान करने की।

पूज्यवर का यह सत्संकल्प उक्त सभी समस्याओं-विडंबनाओं का सार्थक व समुचित समाधान प्राप्त करने का सहज सर्वसाध्य उपाय प्रस्तुत करता है। उपाय है—आत्मसंयम का, आर्थिक अनुशासन के लिए मितव्ययिता के आदर्श को शिरोधार्य करने का। व्यक्ति बस, इतनी समझदारी अपना ले कि वह ईमानदारी, मेहनत और नीतिपूर्ण तरीके से ही अर्थोपार्जन करेगा और जीवन की सभी आवश्यकताओं को पूरा करते हुए सादगीपूर्ण जीवन में अपनी गौरव-गरिमा को महसूस करेगा।

जरूरतें पूर्ण होने के पश्चात यदि धन बच जाए तो उसे सेवा, स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज विकास आदि के उत्थानपरक कार्यों में नियोजित करेगा। इतना कर लेने मात्र से अर्थ संयम का उद्देश्य सार्थक हो जाता है।

समय संयम इस सत्संकल्प का एक महत्त्वपूर्ण चरण है। अर्थ तो व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से अर्जित कर लेता है। जीवन की इसकी मात्रा भी न्यूनाधिक होती रहती है, परंतु समय तो साक्षात् ईश्वरप्रदत्त अमूल्य पूँजी है।

समय ही जीवन और आयु का पर्याय है। इसे कम-ज्यादा नहीं किया जा सकता, केवल इसका सदुपयोग व दुरुपयोग ही किया जा सकता है। मनुष्य जीवन एक सुनिश्चित अवधि के लिए मिला है। इसे कम-ज्यादा नहीं किया जा सकता, परंतु समय का सदुपयोग कर मनोयोगपूर्वक सफलता और सार्थकता के मार्ग पर चलते हुए बिताया जा सकता है।

इस संदर्भ में पूज्य गुरुदेव का महावाक्य है—**'जो जीवन से प्यार करते हैं, वे आलस्य में समय न गँवाएँ।'** समय ही जीवन है, जैसे वचन समय की महत्ता को पहचानने का संदेश देते हैं। अधिकांश लोगों की यह शिकायत रहती है कि समय का अभाव है, परंतु गुरुदेव जैसे महापुरुषों की दृष्टि से यह आलस्य-प्रमाद और गलत कार्यशैली का प्रतिफल है कि समय कम पड़ता है।

समय का अभाव केवल उन्हीं लोगों को होता है, जो जीवन के सुअवसरों को नहीं पहचान पाते तथा समय का सदुपयोग करना नहीं जानते। जबकि बात सिर्फ इतनी है कि आवश्यक कार्यों का जीवनचर्या में निर्धारण और कार्य-संपादन में कुशलता उत्पन्न कर ली जाए तो समय का सार्थक उपयोग और प्रबंधन दोनों हो जाते हैं। जितने भी सफल

एवं महान व्यक्ति हुए हैं, उन्हें कभी समय-अभाव की शिकायत नहीं रही।

समय संयम का एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष है, वह है—शक्ति-सामर्थ्य का संरक्षण एवं विकास। समय का दुरुपयोग जीवनीशक्ति को लक्ष्य से विपरीत दिशा में नष्ट करा देता है और समय का उपयोग ही न किया जाए, आलस्य, निष्क्रियता में बने रहे तो जीवन की समस्त शक्ति-संभावना पड़े-पड़े लोहे में जंग की भाँति जीवन को रोगी बनाकर नष्ट कर देती है।

समय का सदुपयोग ही प्रत्येक मनुष्य के लिए जीवन की सफलता, सार्थकता व उत्कर्ष का एकमात्र उपाय है। कम-से-कम इतना तो किया ही जा सकता है कि व्यक्ति अपनी इच्छाओं, लक्ष्यों के अनुरूप जीवनचर्या का अवलोकन-विश्लेषण करे और तदनुरूप महत्त्वपूर्ण कार्यों को निर्धारित कर तत्परता, सजगता व कुशलता से उनका संपादन करे।

समय के इतने प्रबंधन मात्र से समय संयम की अलौकिक विभूतियाँ एवं सामर्थ्य जीवन में प्रकट होने लगेंगे। इतना करने के लिए जिस आत्मबल और संकल्पशक्ति की आवश्यकता होती है, उसके लिए पूज्य गुरुदेव ने आत्मबोध और तत्त्वबोध की साधना के दो अत्यंत सरल उपाय बताए हैं। इनके नियमित पालन मात्र से समय संयम की सिद्धि सुलभ हो जाती है।

विचार संयम पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रणीत संयम साधना का चतुर्थ महत्त्वपूर्ण आयाम है। विचार मनुष्य जीवन की अद्भुत क्षमता और प्रतिभा है। धरती पर अन्य प्राणिजगत् को यह प्राप्त नहीं है। परमात्मा ने केवल मनुष्य को चिंतनशीलता का उपहार दिया है। एक अच्छा विचार संपूर्ण जीवन और संसार का उत्थान कर सकता है, जबकि एक बुरा विचार संसार के विनाश का कारण बन सकता है।

संसार के समस्त सुख, साधन, वैभव, संपदा और सफलता के पीछे विचारशक्ति ही रही है, परंतु दुःख-पीड़ा, संकटों और पतन का कारण भी विचार ही हैं। पूज्य गुरुदेव ने दुर्विचारों को ही आधुनिक युग की सब समस्याओं का मूल कहते हुए 'विचार क्रांति' का सूत्रपात किया है।

मन में उठने वाली विचार तरंगों की दिशा सही, संयमित कर ली जाए तो व्यक्ति-समष्टि की समस्त समस्याओं का यों ही समाधान निकल आता है। इस सत्संकल्प में कहे गए सभी संयमों की सफलता और सिद्धि की डोर भी विचार संयम ही है।

नकारात्मक विचारों पर नियंत्रण और सकारात्मक व अच्छे विचारों में वृद्धि—यही अभ्यास विचार संयम को फलितार्थ कर देता है। विज्ञों की मंत्रणा में नकारात्मक विचारों को आत्मसमीक्षा, चिंतन-मनन और सजगता द्वारा सहजता से हटाया जा सकता है तथा सकारात्मक विचारों के लिए स्वाध्याय, सत्संग, एकाग्रता, मौन जैसे आत्मानुशासन के उपाय कहे गए हैं।

व्यक्ति अपने विचारों को सदैव लक्ष्योन्मुख बनाए रखे, उनमें रचनात्मकता व सकारात्मकता उत्पन्न कर सके तो दुर्विचारों को जीवन में आने का स्थान ही नहीं मिलता है। सद्ज्ञानरूपी गायत्री शक्ति की उपासना को मानव मात्र के लिए अभीष्ट बताते हुए पूज्य गुरुदेव के वचन हैं कि 'परमात्मा यदि किसी को कुछ देना चाहे तो वह उसे सद्विचार के रूप में देता है' अर्थात सद्विचार ईश्वरीय कृपा की प्राप्ति है।

वर्तमान समय में आधुनिकता और भोगवादी प्रवृत्तियों ने मनुष्य के विचारों को व्यापक रूप से

दूषित और नकारात्मक बना डाला है। परिणाम दुष्ट आचरण, चरित्र और व्यवहार की संकीर्णता सर्वत्र व्याप्त दिखाई पड़ती है। ऐसे में विचार संयम से ही जीवन की दिशा और दशा को सुधारा जा सकता है। विचारों से ही जीवन और जगत् चलता है। इनकी शक्ति अपरिमित कही गई है।

योगवासिष्ठ में विचारों की महत्ता का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

न विचारं विना कश्चिदुपायोऽस्ति विपश्चिताम्।
विचारादशुभं त्यक्त्वा शुभमायाति धीः सताम्॥

अर्थात बुद्धिमान को विचार छोड़कर अन्य दूसरा कोई उपाय नहीं, विचार से बुद्धि अशुभ को छोड़कर शुभ को ग्रहण करती है। सत्संकल्प के इस चतुर्थ सोपान में बताए गए ये चार संयम मनुष्य जीवन के संपूर्ण उत्कर्ष एवं कल्याण की रीति-नीति प्रकट करते हैं।

जीवन का लक्ष्य सांसारिक हो अथवा आध्यात्मिक—यह संयम साधनारूपी अनुशासन की जीवनपर्यंत आवश्यकता एवं अनिवार्यता समान रूप से सभी के लिए है। ❑

एक राजा अत्यंत चिंतित एवं उदास रहा करता था। चिकित्सकों ने उसे प्रसन्न करने के बहुत प्रयत्न किए, किंतु कोई सुखद परिणाम न निकला।

तब किसी ने सुझाव दिया कि 'यदि राजा को किसी सुखी व प्रसन्न व्यक्ति का कुरता पहना दिया जाए तो राजा सुखी हो जाएगा।'

राजकर्मचारी तुरंत ही ऐसे व्यक्ति की खोज करने में लग गए। संयोगवश एक प्रसन्न व्यक्ति मिल भी गया। कर्मचारी उसे राजा के पास लेकर पहुँचे।

उसे देखते ही राजा खुशी से चीखा और बोला—"लाओ, जल्दी से अपना कुरता मुझे लाकर दे दो, तो मैं उसे पहन लूँ।"

वह व्यक्ति बोला—"राजन्! मैं तो साधारण-सा किसान हूँ। कुरता तो क्या मैंने जीवन में एक अँगोछा भी नहीं देखा है, पर जो मुझे मिला है, उससे मैं संतुष्ट हूँ और उसी से प्रसन्न हूँ।"

राजा की समझ में आ गया कि संतोष ही सुख का कारण है।

किशोरों में अपराधी मनोवृत्ति पर शोध

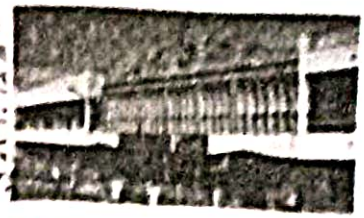

किशोरावस्था व्यक्तित्व के विकास एवं संतुलन की दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील अवस्था होती है। इसमें शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक परिवर्तन तीव्रता से होते हैं। ये सभी परिवर्तन किशोरों के व्यवहार एवं आचरण को प्रभावित करते हैं। यही वह उम्र होती है, जब किशोर अपनी पारिवारिक सीमाओं से बाहर निकलकर सामाजिक और समूह भावनाओं का विकास सीखता है।

नेतृत्व, सहानुभूति, समायोजन, सहयोग, सम्मान जैसे महत्त्वपूर्ण गुण इसी अवस्था में विकसित होते हैं, लेकिन इस अवस्था की कुछ जटिल चुनौतियाँ भी होती हैं; जैसे विचार व समझ का स्तर अपरिपक्व होता है, परंतु इच्छाओं और कल्पनाओं का आसमान एकदम खुला होता है।

ऐसे में सावधानी न रख पाने से कल्पनाओं की दुनिया में भटकना स्वाभाविक हो जाता है। किशोरावस्था पर ध्यान न दिया जाए तो बाह्य परिवेश से असमायोजन और भावनात्मक व काल्पनिक दुनिया का भटकाव सहजता से किशोरों के व्यक्तित्व को समस्याग्रस्त बना देते हैं।

ऐसी समस्याओं का दायरा अत्यंत व्यापक है, जैसे—चिंता, विचार विकार, आवेग, अवसाद, आचरण विकार, हिंसक व अपराधी व्यवहार, नैतिक व सामाजिक मर्यादाओं के विपरीत कार्य आदि अनेकानेक व्यक्तित्वजन्य समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन समस्याओं में अपराधी व्यवहार एक बड़ी समस्या है और समाज में यह तीव्रता से फैल रही है। इनमें हिंसक व्यवहार, संपत्ति को नष्ट करना, चुराना, दूसरों के साथ हिंसा करना, झूठ बोलना, झगड़ना, नियमों के विपरीत कार्य करना आदि सम्मिलित हैं।

इस समस्या की व्यापकता और दुष्परिणामों को देखते हुए सुधारात्मक व उपचारात्मक प्रक्रियाओं को प्रभावी व सुदृढ़ बनाना अत्यंत आवश्यक है। यद्यपि न्याय-व्यवस्था में अपराधी-व्यवहार से ग्रस्त किशोरों के लिए विशिष्ट कानूनों का प्रावधान है, परंतु इसके अलावा भी समस्या के समाधान को प्रभावी बनाने के लिए अतिरिक्त उपायों को खोजे जाने की आवश्यकता है।

इस संदर्भ में वर्ष—2022 में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के शिक्षाशास्त्र विभाग के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है। यह अध्ययन शोधार्थी ऋचा चंदेल द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० ममता अरोरा के निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

इस अध्ययन का विषय है—**'दि इफेक्ट ऑन एन एजुकेशनल इन्टरवेन्सन ओवर दि पर्सनिलिटि ऑफ जुवेनाइल डेलींक्वेन्ट्स।'** प्रायोगिक एवं वैज्ञानिक रीति से संपन्न किए गए इस शोध अध्ययन को कुल पाँच अध्यायों में वर्गीकृत कर प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन की प्रयोगात्मक प्रक्रिया को पूरा करने के लिए शोधार्थी द्वारा उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जिले से यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा 30 से 50 की संख्या में छात्र संप्रेक्षागृह—बालक, मुरादाबाद तथा इन्टर कॉलेज मुरादाबाद से चयनित किए

गए। यह सुनिश्चित किया गया कि सभी की आयु 10 से 15 वर्ष के मध्य हो।

चयन की प्रक्रिया पूर्ण होने पर सभी चयनितों का शोध-उपकरण की सहायता से स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। परीक्षण में जिस उपकरण को प्रयुक्त किया गया वह है—संजय वोहरा द्वारा निर्मित 'मल्टीडायमेन्शनल असेसमेन्ट ऑफ पर्सनलिटि सिरीज।' इस परीक्षण को पूरा करने में प्रत्येक के लिए 30 मिनट का समय निर्धारित किया गया था।

परीक्षण हो जाने के उपरांत शोधार्थी द्वारा शैक्षणिक हस्तक्षेप की प्रक्रिया को लागू किया गया। शैक्षणिक हस्तक्षेप में जिन विशिष्ट तकनीकों एवं गतिविधियों को सम्मिलित किया गया, वे हैं—

(i) गीत—किसी के काम जो आए—5 मिनट,
(ii) प्रज्ञायोग (दो चक्र)—15 मिनट,
(iii) प्राणाकर्षण प्राणायाम—5 मिनट,
(iv) बाल निर्माण की कहानियाँ—20 मिनट,
(v) सद्विचार (पूरे सप्ताह एक ही अच्छे विचार की पुनरावृत्ति)—3 मिनट तथा
(vi) शुभकामना—2 मिनट।

इस प्रकार कुल 50 मिनट का निर्धारित कार्यक्रम संपन्न कराया गया। उक्त छह प्रक्रियाओं से युक्त कार्यक्रम सप्ताह के प्रथम दिन का है। शेष दिनों में उक्त निर्धारण के चतुर्थ बिंदु में प्रतिदिन परिवर्तित एवं नवीन गतिविधि को सम्मिलित किया गया। जैसे सप्ताह के दूसरे दिन—प्रेरक कहानियाँ, तृतीय दिन—समूह चर्चा या कहानी सुनाना, चतुर्थ दिन—खेल, पंचम दिन—व्यक्तिगत प्रदर्शन एवं अभिव्यक्ति।

तीन माह की शोध-अवधि तक सप्ताह के कुल पाँच दिन उक्त निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार शोधार्थी द्वारा शैक्षणिक हस्तक्षेप का अभ्यास कराया गया। शोध की अवधि पूर्ण होने पर पूर्व की भाँति पुनः शोध-उपकरण की सहायता से सभी का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया।

दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों एवं तथ्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के माध्यम से यह पाया गया कि शोध प्रयोग में सम्मिलित शैक्षणिक हस्तक्षेप की तकनीकों का किशोरों के अपराधी व्यवहार एवं व्यक्तित्व पर सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

शोध परिणामों में तथ्यात्मक रूप से यह स्पष्ट देखा गया कि शोध के हस्तक्षेप के पूर्व-पश्चात की अवस्था में किशोरों के व्यक्तित्व के सभी आयामों में सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न हुए हैं। अतः किशोरों के अपराधी व्यक्तित्व के उपचार एवं समस्या-समाधान में यह शैक्षणिक हस्तक्षेप एक प्रभावी उपाय के रूप में अपनाया जा सकता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि इस शोध के परिणामों में सार्थकता उत्पन्न करने वाले प्रमुख कारण, इसमें प्रयुक्त शैक्षणिक हस्तक्षेप की विशिष्ट तकनीकें एवं गतिविधियाँ हैं; जैसे प्रेरक कहानियाँ। कहानी चाहे शब्दों से कही जाएँ, या हाव-भाव, चित्रों से व्यक्त की जाएँ, सुनने वाले का मस्तिष्क तन्मयता से इसके पात्रों तथा उनके विचार-भावों से संबद्ध हो जाता है। इससे शांत रहने, धैर्य से सुनने, पढ़ने, समझने, निर्णय लेने, पात्र के प्रति भावनाओं का विकास, प्रेरणा, चारित्रिक आदर्शों के प्रति विश्वास; जैसे अनेकों सकारात्मक प्रभाव व्यक्तित्व में उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार प्रार्थना से भी मन शांत होता है तथा जीवन-दृष्टि को विकसित करने में सहायता प्रदान करता है। योग एवं प्राणायाम तो संपूर्ण व्यक्तित्व को रूपांतरित कर क्षमतावान एवं समस्यारहित बनाने की प्रभावी तकनीक के रूप में सर्वविदित

ही है। खेल एवं समूह चर्चा; स्वास्थ्य के साथ-साथ सामाजिक समायोजन, निर्णय-क्षमता, नेतृत्व-क्षमता, सहयोग की भावना आदि अनेक विशेषताओं को व्यक्तित्व में उत्पन्न करते हैं।

स्वयं को प्रदर्शन का अवसर मिलने पर आत्मविश्वास, स्वानुभूति, चिंतन, रचनात्मकता, कल्पनाशक्ति, दूसरों की समझ, प्रतिस्पर्धा जैसी अनेक क्षमताओं का अंकुरण एवं विकास संभव होता है।

उक्त सभी तकनीकें संयुक्त रूप से अत्यंत सार्थक एवं सुनिश्चित परिणाम उत्पन्न करती हैं। इस शोध में शोधार्थी द्वारा चयनित एवं प्रयुक्त ये तकनीकें शैक्षणिक हस्तक्षेप में सम्मिलित हैं और इसी रूप में प्रभावकारी सिद्ध हुई हैं, परंतु स्वतंत्र रूप से भी प्रत्येक का अपना विशिष्ट महत्त्व है। यहाँ ये सभी सम्मिलित रूप में एक उपचारात्मक प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त हुई हैं। अत: इस दृष्टि से इनका किशोरों के व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव तो प्रामाणिक रूप से उजागर हो जाता है।

शोधार्थी का मत है कि यह शैक्षणिक हस्तक्षेप युवाओं के कल्याण एवं जीवन के सही दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। विशेष कर ऐसे किशोर-युवा, जो अपनी पहचान के लिए संघर्ष कर रहे हैं एवं आंतरिक व्यक्तित्व में समस्याग्रस्त हैं, उनमें यह सकारात्मक परिवर्तन लाने में अत्यंत सहायक होगा।

इस शोध के निष्कर्ष यह भी स्पष्ट करते हैं कि इन अभ्यासों को नियमित रूप से करने से किशोरों को सही निर्णय लेने, आदर्शों का चयन करने, उचित दिशा में मार्गदर्शन प्राप्त करने व दूसरों को समझने की क्षमता जैसे लाभ प्राप्त होते हैं।

शोध परिणामों में यह भी स्पष्ट पता चलता है कि शिक्षा केवल जीविका का साधन मात्र नहीं है, अपितु अच्छा और सही जीवन जीने का एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावी साधन भी है। जीवन में नैतिकता, सामाजिकता, आचरण और आत्मसम्मान का महत्त्व सिखाने में शिक्षा की विशेष भूमिका रहती है।

अध्ययन के निष्कर्ष रूप में शोधार्थी का विनम्र सुझाव यह है कि प्रार्थनाओं, नैतिक शिक्षा पर आधृत प्रेरक कहानियों, योगाभ्यास, प्राणायाम, कौशल प्रशिक्षण, सत्साहित्य, समूह चर्चा, खेल आदि से किशोरों के दृष्टिकोण एवं जीवन-व्यवहार में सार्थक परिवर्तन लाना संभव हो पाता है। स्कूलों एवं सुधारगृहों में ऐसे अभ्यासों को नियमित रूप से कराया जाना चाहिए। इससे न केवल किशोरों की क्षमताओं का सही दिशा में नियोजन होगा, अपितु उनके उचित मार्गदर्शन और अच्छे भविष्य के निर्माण में भी सहायता प्राप्त होगी। ❑

इक्कीसवीं सदी की संपूर्ण व्यवस्था एकता और समता के सिद्धांतों पर निर्धारित होगी। हर क्षेत्र में, हर प्रसंग में, उन्हीं का बोलबाला दृष्टिगोचर होगा। इस भवितव्यता के अनुरूप हम अभी से धीमी-धीमी तैयारियाँ शुरू कर दें तो यह अपने हित में होगा। ब्राह्ममुहूर्त में जागकर नित्यकर्म से निबट लेने वाले व्यक्ति सूर्योदय होते ही अपने क्रियाकलापों में जुट जाते हैं, जबकि दिन चढ़े तक सोते रहने वाले कितने ही कामों में पिछड़ जाते हैं।

— परमपूज्य गुरुदेव

युगगीता – 312

अतृप्ति, असंतोष और अशुचि राजसिक कर्मों के हैं लक्षण

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की सत्ताईसवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के छब्बीसवें श्लोक की व्याख्या इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान अर्जुन को सात्त्विक कर्मों की व्याख्या प्रदान करते हुए कहते हैं कि जो कर्त्ता संगरहित, अहंकार के वचन न बोलने वाला, धैर्य एवं उत्साह से युक्त तथा कार्य के सिद्ध होने अथवा न होने—दोनों में हर्ष तथा शोकादि विचारों से रहित है, उसके द्वारा किए जाने वाले कर्म सात्त्विक कर्म कहलाते हैं। भगवान कृष्ण कहते हैं कि सात्त्विक कर्म को करने वाला व्यक्ति 'मुक्तसंगः' होता है अर्थात उसका कर्मों को करने के प्रति, उनके परिणामों के प्रति राग नहीं होता एवं वो उनके प्रति रागरहित होता है। राग का अर्थ यह है कि व्यक्ति उस कर्म को मात्र इसलिए करता है कि उसे मनोनुकूल परिणाम की प्राप्ति हो। जहाँ रागयुक्त कर्म का आधार कामना, वासना, आसक्ति इत्यादि बनते हैं तो वहीं सात्त्विक कर्मों को करने वाला इनके प्रति किसी भी तरह की लिप्तता से मुक्त होता है।

ऐसा कहने के साथ यह भी स्पष्ट है कि जो करने के राग से युक्त होगा, वह उनके प्रति अहंकार से भी मुक्त होगा। जिनके पास कर्मों को करने का अहंकार होता है, वो आसुरी शक्तियों से युक्त होते हैं एवं उनके द्वारा किए गए कर्म दूषित परिणामों को प्रदान करते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि इसी के साथ सात्त्विक कर्म करने वाले व्यक्ति में अद्भुत धैर्य होता है। कर्त्तव्य कर्म को करते हुए यदि विघ्न-बाधाएँ आ भी जाती हैं तो न केवल उसकी धीरता यथावत् बनी रहती है, वरन उसका उत्साह भी कभी मंद नहीं पड़ता। इसी को भगवान श्रीकृष्ण ने 'धृति उत्साह समन्वितः' कहकर के पुकारा है। अंत में योगेश्वर कृष्ण कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति सिद्धि व असिद्धि में, सफलता व असफलता में पूर्णतया संतुलित रहकर कार्य करता है। इन्हीं गुणों से युक्त व्यक्तित्व सात्त्विक कर्मों का कर्त्ता कहा गया है।]

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्त्ता राजसः परिकीर्तितः॥ *27*॥

शब्दविग्रह—रागी, कर्मफलप्रेप्सुः, लुब्धः, हिंसात्मकः, अशुचिः, हर्षशोकान्वितः, कर्त्ता, राजसः, परिकीर्तितः।

शब्दार्थ—कर्त्ता (**कर्त्ता**), आसक्ति से युक्त (**रागी**), कर्मों के फल को चाहने वाला (और) (**कर्मफलप्रेप्सुः**), लोभी है (तथा) (**लुब्धः**), दूसरों को कष्ट देने के स्वभाव वाला (**हिंसात्मकः**), अशुद्धाचारी (और) (**अशुचिः**), हर्ष-शोक से लिप्त है (वह) (**हर्षशोकान्वितः**) राजस (**राजसः**), कहा गया है (**परिकीर्तितः**)।

अर्थात जब कोई कर्त्ता कर्मफल की लालसा, लोभ, हिंसक प्रवृत्ति, अशुचि, हर्ष एवं शोक से प्रेरित होकर कर्म करता है तो वह राजसी कर्त्ता कहलाता है।

यहाँ भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को राजसी कर्त्ता का वर्णन बताते हुए कहते हैं कि जहाँ सात्त्विक कर्मों के कर्त्ता का कर्म करने का उद्‌देश्य आध्यात्मिक उत्कर्ष होता है तो वहीं राजसिक कर्त्ता, कर्मों को लौकिक एवं सांसारिक लाभों की प्राप्ति के उद्‌देश्य से किया करते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं **'रागी'** अर्थात रजोगुण का आधिक्य होने के कारण राजसिक कर्त्ता के लक्षणों में सबसे पहला लक्षण राजयुक्त कर्म को करने की अभिलाषा होती है अर्थात उसके कर्म को करने के पीछे का आधार कामना, वासना, तृष्णा, आसक्ति इत्यादि होते हैं।

इन कारणों से कर्म करने वाला व्यक्ति 'रागी' कहलाता है। इसीलिए उसके कर्म को करने का आधार फल की प्राप्ति होता है **'कर्मफलप्रेप्सुः'** निष्कामता नहीं।

राजसिक कर्मों का कर्त्ता लोभी भी होता है— **'लुब्धः'** अर्थात जो मिल गया, उसमें उसे संतोष नहीं होता, बल्कि और मिले, मिलता जाए—ऐसी उत्कंठा उसके मन में होती है।

इस संदर्भ में सिकंदर की एक कथा आती है। कहते हैं कि जब वो भारत की सीमा से नैतिक रूप से परास्त होने के बाद वापस लौटने लगा तो उसे एक रात किसी छोटे गाँव में गुजारनी पड़ी। वह थका-हारा था, आधी से ज्यादा सेना को गँवा चुका था।

एक छोटे गाँव के बाहर उसकी विशाल सेना ने डेरा डाला, वहाँ एक वृद्ध महिला का घर था। सिकंदर का सेनापति उस महिला के घर कुछ भोजन माँगने के भाव से पहुँचा। उस महिला ने सेनापति को, सिकंदर को और साथ आए कुछ सैनिकों को बड़े प्रेम से बिठाया और भोजन कराना प्रारंभ किया।

सिकंदर के सेनापति को लगा कि मुझे इस महिला को सिकंदर का परिचय दे देना चाहिए। वह सिकंदर का परिचय कराता हुआ बोला— "माते! ये महान शासक सिकंदर हैं।"

यह सुनते ही उस वृद्ध महिला ने सिकंदर को रोटी देने के स्थान पर सिक्के परोस दिए। सिकंदर आश्चर्यचकित होता हुआ बोला—"बाकी सबको रोटियाँ और मुझको सिक्के क्यों?"

वह महिला बोली—"बेटा! यदि तू रोटियों से अपने राज्य में ही संतुष्ट हो गया होता तो इन सिक्कों की चाहत में यहाँ तक मारा-मारा क्यों घूमता? तुझे वही दिया है, जिसकी भूख तुझे है।" भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि राजसिक कर्मों का कर्त्ता इसी तरह 'और मिले' की भावना से कर्म करता जाता है और कभी संतुष्ट नहीं होता।

मन में अभाव का यह भाव और असंतोष की वृत्ति उसके स्वभाव को अशुचि एवं हिंसा से युक्त कर देते हैं, इसीलिए भगवान कृष्ण कहते हैं कि **'हिंसात्मकः'** वह हिंसा के स्वभाव वाला होता है और अपनी स्वार्थपूर्ति में यदि किसी को पीड़ा भी हो तो उनकी परवाह करे बिना हिंसा तक करने को तत्पर रहता है।

जिसका स्वभाव ऐसा होगा, फिर उसका जीवन हर्ष-शोक, राग-द्वेष, सुख-दुःख इन्हीं उलझनों में उलझा रहता है और उसे किसी भी प्रकार आंतरिक शांति की प्राप्ति नहीं होती है। राजसिक कर्मों के कर्त्ता ये अनुभव ही नहीं करते कि इस संसार में सब कुछ अस्थायी है और एक दिन सब पीछे छूट जाएगा।

असीमित राग, अतृप्ति, असंतोष और पाने की लालसा उनसे अपवित्र और हिंसात्मक कर्मों को कराती चली जाती है और इसी प्रपंच में पूरा जीवन उनके हाथ से निकलता चला जाता है। (क्रमशः)

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

कैसी होती है सच्ची भक्ति ?

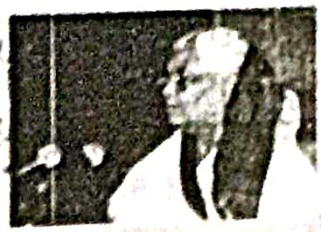

परमवंदनीया माताजी, जिनकी जन्म शताब्दी को हम लोग इस वर्ष मना रहे हैं, वे करुणा, ममता एवं वात्सल्य की प्रतिमूर्ति तो हैं ही, साथ ही पूज्य गुरुदेव की प्रखर वाणी भी उनके माध्यम से मुखरित होती रही है। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्‌बोधन में परमवंदनीया माताजी गायत्री परिवार के सभी साधकों को एवं उन सभी साधना-पथ के पथिकों को संबोधित करते हुए कहती हैं कि सच्ची भक्ति, भगवद्‌भक्ति का आधार जानना हर साधक के लिए अनिवार्य है। वंदनीया माताजी सभी को समझाते हुए कहती हैं कि भक्ति बाह्य आडंबर से नहीं, वरन आंतरिक परिष्कार से सुनिश्चित होती है। जिसका हृदय निर्मल होता है, जिसकी भावनाएँ उदार होती हैं एवं जिसका व्यक्तित्व ईश्वर एवं गुरुप्रदत्त पथ के लिए समर्पित होता है—वही सच्चा भक्त है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

जीवन में भगवद्‌भक्ति

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

"ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।"

बेटियो एवं प्रज्ञा परिजनो! जीवन में जब भगवद्‌भक्ति आ जाती है, तो वह एकांगी नहीं होती, सर्वांगपूर्ण होती है। सर्वांगपूर्ण का मतलब है कि वो अपने तक सीमित न होकर के सारे विश्व में, सारे समाज में और सारे राष्ट्र में फैल जाती है और जो अपने तक सीमित होती है तो उसको संकीर्णता कहते हैं।

जो अपने तक ही सीमित रहते हैं, अपनी ही मुक्ति और अपना ही स्वर्ग चाहते रहते हैं, मान लीजिए उस एकांगी भक्ति से किसी व्यक्ति को स्वर्ग मिल भी जाए तो आखिर उससे बनेगा क्या? जब उस भक्ति का लाभ सारे समाज को नहीं मिल पाया, कुटुंब को नहीं मिल पाया, राष्ट्र को नहीं मिल पाया और विश्व को नहीं मिल पाया तो एकांगी मुक्ति मिल भी जाए तो आप उसका क्या करेंगे।

श्रीरामकृष्ण परमहंस के पास एक अँगरेज पादरी गया और उनकी भक्ति की खिल्ली उड़ाने लगा। उसने कहा—"हमने सुना है कि भगवान आपके समीप रहता है और काली माँ आपके साथ रहती हैं, तो क्या आप हमें भी दिखाएँगे?"

उन्होंने कहा—"हाँ, मैं दिखा सकता हूँ। मेरी काली माँ हर समय मेरे साथ रहती हैं और वो परमब्रह्म हर समय मेरे रोम-रोम में समाया रहता है।"

उस पादरी को लेकर के वे एक कोढ़ी की कुटिया में पहुँचे और कुटिया में जा करके उन्होंने रूई के फाये से पहले उसको पोंछा, धोया और उसकी मरहम-पट्टी लगाई। किस आस्था के साथ, जैसे कि मान लीजिए साक्षात् भगवान कोढ़ी के

रूप में हों और वो भक्त के रूप में उनकी मरहम-पट्टी लगा रहे हों।

साक्षात् भगवान के दर्शन

अँगरेज नतमस्तक हो गया और उसने कहा कि बस, भगवान को पा लिया, भगवान को मैंने देख लिया। अब आपके कहने की आवश्यकता नहीं है, मैंने तो साक्षात् आपको ही भगवान के रूप में देख लिया। जो करना चाहिए था भगवान के भक्तों को, वो आप कर रहे हैं और मैं तो देखने के लिए आया था; क्योंकि मुझे तो आपकी भक्ति पर विश्वास नहीं था, लेकिन मैंने पाया कि आपकी भक्ति सार्थक है।

भक्ति तभी सार्थक होती है, जब उसका परिणाम दूरगामी हो और हमारे समाज को और विश्व को उसका लाभ मिले। तपस्वी तिल-तिल अपने को गलाते आए हैं। आप गुरुजी को ही देख लीजिए। आप उनको गुरुजी कहते हैं, मैं अधिकतर आचार्य जी कहती रही हूँ।

उन्होंने अपना सारा जीवन तप में ही लगा दिया। अपने लिए? नहीं अपने लिए नहीं, अपने लिए स्वर्ग-मुक्ति चाहिए होती या भौतिक साधन चाहते होते तो हम भी सेठ-साहूकारों की तरह से रहे होते और राजनीतिक क्षेत्र में गए होते तो कोई बड़े नेता हुए होते, लेकिन नहीं हम तो उस भगवान के नेता हैं। हम तो उस भगवान के बेटे हैं, जिसने हमको जन्म दिया है और आशा की है कि आगे चल करके विश्व मानव को जो पीड़ा और पतन से कराह रहा है, राहत पहुँचाएँगे।

बेटे! गुरुजी ने सारी जिंदगी तिल-तिल करके अपने को गला दिया। इस उम्र में भी, पचहत्तर वर्ष की आयु में भी इतना कठोर तप उन्होंने किया और कर रहे हैं। कब तक पूर्ण होगा? संकल्प की दृष्टि से तो यह वसंत पंचमी तक पूर्ण हो जाता है, पर अभी और भी कुछ आगे चलेगा, ऐसा मेरा अनुमान है।

भक्ति का सही स्वरूप

बेटे! भक्ति का सही स्वरूप अभी आप समझ नहीं पाए। भक्ति का सही स्वरूप समझ जाएँगे तो समझ में आ जाएगा कि भक्ति किसे कहते हैं।

प्रातःकाल का स्वर्णिम सूर्य अपनी आभा को विस्तारित करता गगनमंडल पर प्रतिष्ठित था। उस दैवी वातावरण में मनोहारी हवा बह रही थी। चिड़ियों की चहचहाहट वातावरण को और सुरम्य रूप प्रदान कर रही थी।

जमीन पर रेंगती चींटियों में से एक ने दूसरी से पूछा—"कभी-कभी मन में विचार आता है कि जिसने ये विश्व बनाया वो कौन होगा?"

दूसरी चींटी बोली—"बहन! ये तो नहीं पता कि वो कौन होगा, पर यह पता है कि वो जो भी होगा, प्रेम का साकार रूप होगा, तभी तो वो हम नन्ही-सी चींटियों को और वृहद विशाल हाथियों को समान रूप से प्रेम करता है और सभी के पालन-पोषण का समुचित ध्यान रखता है। प्रेम का साकार स्वरूप ही परमात्मा है।"

भक्ति बनावटी आडंबर को नहीं कहते, भगवान परखता है कि मेरा सच्चा भक्त कहाँ है? चलिए इस संदर्भ में मैं आपको एक उदाहरण सुनाना चाहूँगी

कि ईश्वरदर्शन किसे कहते हैं? मैंने अभी आपको एक उदाहरण सुनाया रामकृष्ण परमहंस का। दूसरा मैं सुनाना चाहूँगी रैदास का। सोमवती अमावस्या थी और लोग गंगास्नान करने जा रहे थे। रैदास से कहा कि चलो आप भी गंगास्नान के लिए चलो।

उन्होंने कहा—"लो मेरे फूल और माँ गंगा को अर्पण कर देना तथा कहना कि रैदास आज व्यस्त है, वो आ नहीं पाया। लोग गए और सबने भेंट चढ़ाई, किसी ने दूध चढ़ाया, किसी ने फूल चढ़ाए, किसी ने दीपक चढ़ाया। सब अपने आनंद में थे, लेकिन अंत में जो फूल रैदास ने दिए थे, उन्होंने जब अर्पण किए और कहा—"माँ रैदास ने कहा है कि मेरी माँ को मेरे फूल अर्पण करना और मेरी माँ हाथों में लेगी। यही हुआ। जैसे ही रैदास का नाम आया कि गंगा ने दोनों हाथ बाहर निकाल दिए और वो फूल उन्होंने अपनी अंजलि में ले लिए।

उपासना और भक्ति

बेटे! ये होती है उपासना और ये होती है भक्ति। भक्ति जो होती है, अपनी अंतरात्मा को धोने के लिए होती है। मैल की जो परत जीवात्मा पर चढ़ी हुई होती है, उस आवरण को हटाना पड़ता है। अँगारे के ऊपर यदि मैल जमा हो जाए, गरदा जमा हो जाए तो अग्नि का जो वास्तविक स्वरूप है, वो दिखाई नहीं पड़ेगा। जब उसको हटा देंगे, फिर वो वास्तविक अग्नि के रूप में लाल-लाल अँगारा जैसा दिखाई पड़ेगा। क्यों? अँगारा तो वही है, जो अभी तक राख की परत में छिपा हुआ था, लेकिन जब वो परत हटा दी गई तो अग्नि का रूप प्रकट हो गया।

इसी तरीके से जब हम भगवान को अपने में मिला लेते हैं तो हम भगवान के भक्त जैसा ही आचरण करने लगते हैं। भगवान ने जो उम्मीद की है, उसी के अनुसार भक्त चलता है और इसके विपरीत चला तो केवल आत्मतुष्टि हो सकती है, केवल अपने दिमाग की तुष्टि हो सकती है, पर जीवात्मा की नहीं।

उसमें कहाँ तक सफलता मिलेगी, हम नहीं समझते कि सफलता मिलेगी; क्योंकि इस रास्ते से हट करके हमने देखा है कि भक्ति से कितना लाभ होता है। अनायास इतना लाभ मिलता है कि शायद ही किसी को दुर्लभ हो, क्योंकि भक्ति उसके जीवन में समायी हुई है।

मन चंगा तो कठौती में गंगा

रैदास का एक उदाहरण मैं अभी सुना चुकी हूँ। रैदास का एक और संदर्भ है कि वे बैठे थे और अपना वही काम जो चमड़े का था, बड़ी लगन और आस्था के साथ कर रहे थे कि जो ग्राहक आया है, ये मेरा भगवान है और भगवान की सेवा करना मानवता का धर्म है। तभी एक व्यक्ति आया और उसने कहा कि तुम्हारी माँ गंगा कहाँ है? आज मेरी औरत के कंगन खो गए हैं, वो मिल जाएँ तो मैं जानूँ कि तुम्हारी गंगा माँ ऐसी है।

उनने कहा कि देखो भक्ति यह नहीं होती है, वो आस्था और विश्वास है तो उसने कहा कि तुम्हें अपने भगवान के ऊपर विश्वास है। उन्होंने कहा कि हाँ! हमें अपने भगवान के ऊपर विश्वास है। हमें अपनी गंगा माँ पर विश्वास है। उसने कहा कि अच्छा दिखाओ तो जानें। उन्होंने कहा—**"मन चंगा तो कठौती में गंगा"** और उनकी कठौती में गंगा आ गई और जैसे ही उन्होंने हाथ डाला तो कंगन हाथ में आ गए। संभव है यह किंवदंती भी हो, लेकिन इसके पीछे जो छिपा रहस्य है, वो भक्ति का है।

भक्ति जब होगी तो पूर्ण आस्था के साथ होगी। जब हम भगवान की उपासना करेंगे और भगवान

के समीप बैठेंगे तो भक्त का स्वरूप भगवान जैसा हो जाएगा अन्यथा माला घुमाते रहिए और गिनते रहिए उसकी गिनती। कितनी मालाएँ होंगी ? इतनी माला कीं तो इतने में हमें कितना मिला ? और जो भक्ति का असली सही स्वरूप है, उसको नहीं समझ रहा। इससे क्या मिलने वाला है, परोक्ष रूप से वो नहीं समझता।

यह स्वार्थ है। बेटे ! मैं कहती हूँ कि क्या आप भगवान से मुआवजा चाहते हो या ये चाहते हो कि हमने जो जप किया, हमको उसका मुआवजा मिलना चाहिए ? मैं तो कई बार कह भी देती हूँ कि बेटे ढाई घंटा रोज आपने उपासना की है तो ले जाइए साढ़े बाईस रुपये।

चलिए इतना ही नहीं, अगर साढ़े बाईस रुपये कम हैं तो चल और दिलवा देंगे। तू तीन रुपया रोज के हिसाब से ले जा। 27 माला में भगवान को बहकाना चाहते हैं ? भगवान बहुत बड़ी शक्ति है और भगवान जब देता है तो क्या-क्या देता है, जरा अपनी संकीर्णता को हटा करके तो देखिए। यदि संकीर्णता जीवन में से हट जाती है, तो हमको वो नियामतें मिलती हैं, जो हमारी झोली में समाती ही नहीं हैं।

संकीर्णता दूर करें

रवींद्रनाथ टैगोर की एक कविता है और उसमें बताया गया है कि एक भिखारी था। उसने किसान के सामने हाथ फैलाया। किसान के पास गेहूँ की एक गठरी थी और उसने उसमें से एक दाना भिखारी के हाथ में रख दिया। जब भिखारी चला गया तो उसने देखा कि उसकी गठरी में जो अनाज भर रहा था, उसमें से एक दाना सोने का हो गया। तो उसने सिर पर हाथ रख करके कहा कि भगवान! मुझमें यह बुद्धि पहले क्यों नहीं आई कि मैं सारे-के-सारे दाने दे देता और ये सोने के हो जाते। मैं कितना संकीर्ण निकला।

भगवान का भक्त कभी संकीर्ण नहीं होता, वो उदार होता है। उदारता उसके जीवन में होती है, दूसरों की मदद करने के लिए तत्पर रहता है, खुद

गुरु से शिष्यों ने पूछा—"गुरुवर! संसार में सभी तरह के साधनों के होते हुए भी व्यक्ति अभावग्रस्त क्यों है ?"

गुरुदेव बोले—"वत्स! संसार में लोग सुख को प्रतिस्पर्धा के आधार पर तोलते हैं। साधनों का उद्देश्य आवश्यकताओं को पूर्ण करना है, पर लोग महत्त्वाकांक्षाओं की प्रतिपूर्ति में नियोजित करते हैं। इसलिए मिलता किसी को नहीं, भाग हर कोई रहा है। इसलिए सब होते हुए भी मन की अतृप्ति अभाव का अनुभव कराती रहती है। संतोष की प्राप्ति साधनों से नहीं, साधना से होती है।"

शिष्यों की जिज्ञासा का समाधान हो गया।

घाटे में रहता है और दूसरों को रास्ता बताता है। खुद रूखी-सूखी खाता है, लेकिन दूसरों को खिलाने में आनंद उठाता है। अहा! खिलाने में जो आनंद

आता है, वो खाने में नहीं आता। जब मेरे सामने मेरे बच्चे बैठे होते हैं तो कोई जरा-सी भी चीज होती है और जब मैं उनको देती हूँ, खिलाती हूँ तो मेरे आनंद का पारावार नहीं रहता। क्योंकि वो मेरे हैं न, मेरापन है और उसमें भक्ति छिपी हुई है। तो ये जो बच्चा है वो मेरा बच्चा ही नहीं, वो मेरा भगवान भी है। इस तरीके से अपने जीवन में भगवान को स्थान देना चाहिए, लेकिन भगवान को हम स्थान नहीं देते। वो अपना ही स्थान रह जाता है।

अपना स्थान किस तरीके से रह जाता है, वह उदाहरण मैं आपको अभी सुनाती हूँ। एक बार लोग गंगास्नान करने के लिए जा रहे थे। उस दिन सोमवती अमावस्या का स्नान था।

शंकर जी और पार्वती जी उधर से गुजरे। पार्वती बोलीं कि महाराज! यह बताइए कि ये जो भीड़ है, ये किसलिए जा रही है। उन्होंने कहा कि गंगास्नान करने के लिए जा रही है। तो फिर गंगास्नान से क्या होगा? पार्वती! जो व्यक्ति गंगास्नान करने जाता है, वह स्वर्ग में जाता है। स्वर्ग में जाता है? आप मजाक मत करिए। कैसा मजाक? आप कह रहे हैं कि गंगास्नान करने वाले सब स्वर्ग में जाते हैं; जबकि सारे-के-सारे, इतनी भीड़-की-भीड़ स्वर्ग में जाएगी तो फिर इतना स्थान कहाँ से आएगा?

उन्होंने कहा—पार्वती क्या बात है? मेरे कहने पर कोई शक है तो चलो मैं अभी तुम्हें दिखाता हूँ। तो उन्होंने कोढ़ी का रूप बनाया और पार्वती का रूप किशोरावस्था का कोई सोलह-अठारह साल की युवती का बनाया और सजी-धजी महिला के रूप में शृंगार और आभूषण पहनाए और वो जो पार्वती जी थीं, अपने पति शंकर जी को पीठ पर बैठा करके गंगास्नान के लिए ले जा रही थीं।

उनमें से कोई गंगास्नान के लिए नहीं जा रहा था, केवल उनको दिखाना था कि भगवद्भक्ति दिखावटी होती है अथवा उसमें कोई वास्तविकता भी होती है।

तो जैसे ही पार्वती जी आगे बढ़ती जाती थीं, लोगों की आवाज कैसी होती थी? कोई कहता था कि तुम हमारे साथ चलो। हमारे यहाँ तो भैंस बँधी है, खूब दूध पिलाएँगे और घी खिलाएँगे।

कोई कहता था कि चलो हमारे साथ चलो, हमारे यहाँ तो मोटरगाड़ी है, अरे! इस कोढ़ी के साथ तुम्हें क्या मिलेगा? वो सिर नीचे झुकाए हुए बड़े दुःखी मन से कहती थीं कि शंकर जी! यह बताइए कि क्या आप मुझे इस स्थिति में डालने के लिए लाए थे? मुझसे सब माँ कहते हैं, आपको पिता कहते हैं और आज मेरी यह दुर्गति हो रही है कि मैं निगाह नहीं उठा पा रही हूँ। लोग वासना की दृष्टि से भेड़िओं के तरीके से मुझे देख रहे हैं।

धर्मात्माओं पर टिका है संसार

बहन और माँ को छोड़ दिया और वासना की दृष्टि से जैसे एक वेश्या के पीछे भड़ुए लगे रहते हैं, इस तरीके से ये मुझे देख रहे हैं और मुझे शरम आ रही है। अब बहुत हो गया। उन्होंने कहा कि पार्वती! अभी नहीं हुआ, अभी विलंब है, अभी देखती जाओ। संसार यों ही नहीं टिका है, कोई पुण्यात्मा और धर्मात्मा भी होता है। मैं अभी तुम्हें दिखाता हूँ।

इस तरीके से सूर्यास्त होने को आ गया और पार्वती का धैर्य चुकने लगा। उन्होंने कहा—बस, बहुत हो गई आप की लीला अब चलिए। उधर से कोई एक गरीब ब्राह्मण गुजर रहा था। वह किसान भी था। पार्वती जी के पास आ करके उसने प्रणाम किया और कहा माँ! आपको लाख-लाख प्रणाम, ऐसी देवियों की बदौलत ही यह पृथ्वी टिकी हुई है, धन्य हैं आप। आप कहाँ जा रही हैं?

उन्होंने कहा—"भैया! मैं अपने पति को गंगा स्नान कराने के लिए लाई हूँ, क्योंकि यह चल नहीं

सकते। कोढ़ी हैं तो इनको मैं पीठ पर रखकर लाई हूँ। अब मैं थक गई हूँ, बेटे मुझसे चला नहीं जाता।'' उसने कहा कि माँ! सारा पुण्य आप ही ले लेंगी क्या?

जरा सेवा का लाभ हमें भी लेने दो और वह आगे बढ़ा और उनके शरीर से जो मवाद निकल रहा था, पीप टपक रही थी, मक्खियाँ भिनक रही थीं, उन शंकर जी को पीठ पर रख करके वो आगे बढ़ने लगा और पीछे-पीछे पार्वती जा रही थीं।

शंकर जी ने कहा कि पार्वती! यह जाएगा स्वर्ग में। असली जो भक्त है, वो ये है। इसमें भक्ति परिपूर्ण तरीके से समायी हुई है। सेवा और उदारता जैसी सारी-की-सारी शक्तियाँ इसके अंदर विद्यमान हैं। स्वर्ग को कौन जाएगा? स्वर्ग को यह जाएगा और ये जो भी है। महाराज! आप कह रहे थे कि जो ये गंगास्नान करने वाले हैं, ये जाएँगे।

उन्होंने कहा कि ये नहीं जाएँगे। तो ये सब कहाँ जाएँगे? ये तो नरक में जाएँगे, क्योंकि जैसी इनकी विचारधारा है, वो जिसमें पले हैं, जिसमें रह रहे हैं, जो इनके संस्कार बन चुके हैं, वो इसी में रहेंगे और जहाँ कहीं भी कोई स्वर्ग में भी जाएँगे तो स्वर्ग की जितनी भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश की जो पत्नियाँ हैं, जैसे कीचड़ में यहाँ फँसे हैं, वहाँ भी गंदगी फैलाएँगे। वहाँ भी ये वासना की दृष्टि से उन देवियों को देखेंगे, जिनके अंदर शक्ति समायी है या दुनिया को शक्ति देती हैं, रास्ता बताती हैं, उनके प्रति भी ये गंदे ही विचार रखेंगे। पार्वती! इसलिए ये नहीं जाएँगे, यह ब्राह्मण जाएगा।

भगवान किसको याद करते हैं

खलीफा उमर खड़े थे और आकाश मार्ग से एक फरिश्ता निकल रहा था। फरिश्ता निकल रहा था तो उन्होंने कहा कि भाई! आपके हाथ में यह क्या है? उन्होंने कहा कि मेरे हाथ में वो डायरी है, जिसमें भगवान के उन भक्तों के नाम हैं, जिन्होंने कि भगवान की भक्ति की है। उन्होंने कहा कि आप जरा पन्ना पलट करके देखना कि इसमें कहीं मेरा नाम है क्या?

उसमें कहीं भी खलीफा का नाम नहीं था, तो वे बहुत दुःखी हुए कि मैंने सारा जीवन सेवा में लगा दिया और सारा जीवन मैंने भक्ति में लगा दिया। भगवान की भक्ति के अलावा मैंने जिंदगी भर कुछ नहीं किया और आज जब मैंने भगवान की उस डायरी में देखा तो मेरा नाम ही नहीं है। सारी रात निकल गई। दिन निकल गया। इस तरीके से कई दिन निकल गए।

एक बार फिर वो फरिश्ता दूसरी पुस्तक को लेकर के आया तो खलीफा ने फिर वही शब्द दोहराए। उन्होंने कहा कि यह बताइए कि आज कौन सी पुस्तक ले करके आए हैं? उन्होंने कहा कि इस पुस्तक में उनके नाम हैं, जिनको कि भगवान स्मरण करते रहते हैं। उन्होंने कहा कि भगवान स्मरण करते हैं? हम तो समझते थे कि भगवान को भक्त स्मरण करता है, भगवान नहीं। नहीं, भगवान भी करता है। तो उन्होंने कहा कि देखिए कहीं मेरा नाम भी हो सकता है क्या? खलीफा ने यह बात फिर दोहराई।

उन्होंने कहा कि मेरा कहाँ हो सकता है; जबकि भगवान की भक्ति मुझसे हुई ही नहीं, तो भगवान मेरी भक्ति कैसे करेगा। ऐसा कैसे हो सकता है? जब फरिश्ते ने किताब खोली तो पहला नंबर खलीफा का आया। कैसे आया? उन्होंने कहा कि खलीफा! अल्लाह ने तेरे लिए भक्ति की है और तेरा स्मरण किया है; क्योंकि तू बड़ा है। तूने सारा जीवन लोक-कल्याण के लिए जिया है, समाज के लिए जिया है। तूने अपने को भुला दिया, अपने को विश्व मानव के कल्याण में समा दिया, तो भगवान तेरा स्मरण कर रहा है।

भक्ति का सही रूप

बेटे! ये होती है भगवान की भक्ति, लेकिन हम भगवान की भक्ति को भूल चुके हैं। भगवान की भक्ति को हमने याद रखा है तो केवल भौतिकता को पाने के लिए, सिर्फ वरदान पाने के लिए और किसी के लिए, आत्मकल्याण के लिए पाया है क्या? नहीं और किसी के लिए नहीं पाया और समाज के लिए, राष्ट्र के लिए यदि हमने भक्ति को पाया होता तो जहाँ छप्पन लाख संत हों तो उनकी संख्या और भी ज्यादा बढ़नी चाहिए। यदि यह भक्ति इनके जीवन में आई होती तो हमारी निरक्षरता रही होती क्या?

जहाँ डकैती, अपराध, भ्रष्टाचार जैसे न मालूम कितने अपराध हमारे समाज में फैले हुए हैं, ये अपराध कहीं रुकते नहीं क्या? अपराध एक तरफ हो जाते और अपराधी कहीं दिखाई नहीं पड़ते, उनका सुधार हो गया होता। अंगुलिमाल डाकू की तरह से जब उनमें संस्कार दिए जाते तो भगवान बुद्ध के चरणों पर जिस तरह से अंगुलिमाल गिर पड़ा था और उसने कहा था कि भगवान अब मैं तुम्हारा हूँ, मैं अब आपका हो चुका।

अरे! तू तो डकैत है। हाँ, मैं डकैत जरूर हूँ, लेकिन मेरे ऊपर आपकी, संत की जो छाया पड़ी और भगवान की जो छाया पड़ी, अब मैं बदल गया, अब मैं डाकू नहीं हूँ और अंगुलिमाल ऋषि हो गया और उसने बौद्ध धर्म का कितना काम किया, यह भगवान की भक्ति का सही स्वरूप है।

बेटे! हमने अपनी जिंदगी में से उसे भुला दिया। न मालूम कैसा अल्लम-गल्लम करते रहते हैं। कभी इस देवी के पास गए, कभी उस देवता के पास गए, कभी मनसा देवी के पास गए, कभी चंडी देवी के पास गए, कभी संतोषी माता के पास गए और कभी हनुमान जी के पास गए। कभी राम के पास गए, कभी कृष्ण जी के पास गए। कहीं ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ न गए हों।

एकै साधे-सब सधै

"एक ही साधे सब सधै और सब साधे सब जाय"। डाल-डाल और पात-पात पर हम घूमते रहे, लेकिन भगवान कहीं नहीं मिला; क्योंकि भगवान को हमने प्यार ही नहीं किया। भगवान का सही स्वरूप ईसा ने समझा था। ईसा से किसी ने कहा कि भगवान कहाँ है? उन्होंने एक बच्चे को गोद में उठा करके दिखाया कि यह है भगवान। तो उसने कहा कि इसमें भगवान कहाँ है?

ईसा ने कहा कि हाँ! इसमें भगवान है। क्यों भगवान है? क्योंकि इसके अंदर न कोई विकृति है, न कोई छल है, न कपट है। जितनी विकृतियाँ आती हैं, बड़े हो करके आती हैं। ईर्ष्या, डाह, जो कुछ भी पनपते हैं, वो बड़े होने पर पनपते हैं। ईसा ने कहा कि यह है वो भगवान। भगवान बुद्ध ने कहा है कि हम क्या करेंगे, स्वर्ग में जा करके?

जब तक हमारा एक भी प्राणी नरक में रहेगा, तब तक हमको आवश्यकता नहीं है कि हम स्वर्ग में जाएँ। हमारे लिए जो नरक है, यही हमारे लिए स्वर्ग है, जहाँ हम रहेंगे, वहीं हम स्वर्ग बना लेंगे। भगवान की भक्ति का यह सही मूल्यांकन है। यही भगवान की भक्ति का सच्चा स्वरूप है। भक्ति के इस स्वरूप को समझ लें तो हम सच्चे भक्तों में गिने जाएँगे और उन भक्तों में आ जाएँगे, जिन्हें मूसा ने जन्नत कहा था।

उन्होंने कहा कि यह बताइए कि स्वर्ग में ये खाली फ्लैट क्यों पड़े हैं? कहा गया कि इसमें भक्त आएँगे। कौन-से भक्त आएँगे? भक्तों की कोई कमी है क्या, फिर स्वर्ग खाली क्यों पड़ा है? लोग सारे दिन माला सटकाते रहते हैं। क्या इनको मुक्ति नहीं मिलेगी?

उन्होंने कहा कि उनको नहीं मिलेगी, जिनको हम लाना चाहते हैं, जिनके लिए हमने फ्लैट खाली छोड़े हैं, उसमें वो आना नहीं चाहते।

क्या करते हैं सच्चे भक्त ?

जो वास्तविक भक्त हैं वो कहते हैं कि यदि हम भक्त हैं तो हमारी भक्ति का लाभ सारे समाज को मिलना चाहिए, सारे राष्ट्र को मिलना चाहिए और सारे विश्व को मिलना चाहिए। हम स्वर्ग में क्यों रहेंगे ? हमको स्वर्ग की आवश्यकता नहीं है। हमारा स्वर्ग तो यहीं है। भगवान ने हमको भेजा है तो मानवता की सेवा के लिए भेजा है। यदि भगवान ने इतनी प्रेरणा और इतनी विचारणा हमारे अंदर में दी है, इतनी संवेदना दी है तो हम मानवता की सेवा करेंगे, उसको मार्गदर्शन देंगे।

भगवान यह कहता है कि ये स्वर्ग में आएँ तो मुबारक है, स्वर्ग उन्हीं के लिए है, लेकिन भक्त कहता है कि इसी नरक में हम स्वर्ग बना लेंगे, ताकि सारे संसार में जो कुविचार फैला हुआ है, उसको सद्विचार से भर देंगे। जहाँ अशांति फैली हुई है, वहाँ हम शांति देंगे।

भगवान की भक्ति का जो सही स्वरूप है, वही आज मैंने बताया है, दरसाया है कि आपको भक्ति का सही स्वरूप समझना चाहिए और जैसी भक्ति ऋषियों ने की है, आचार्य जी ने की है और जिनके पदचिह्नों पर हम और आप चल रहे हैं, उसका अनुकरण करें तो मैं समझती हूँ कि आप भगवान के सच्चे भक्त कहलाने योग्य हो जाएँगे। आज की बात समाप्त।

॥ ॐ शांतिः ॥

राजा सत्यकीर्ति अपने नाम के अनुरूप सत्यवादी थे और इसीलिए उनकी कीर्ति दूर-दूर तक प्रसारित थी। एक बार दूर देश के कुछ विद्वान उनकी परीक्षा लेने के भाव से उनके पास पहुँचे और उनसे यह इच्छा व्यक्त की कि वे भी प्रश्न पूछें, उसका राजा सत्य उत्तर दें। राजा ने उन्हें उनकी इच्छा पूर्ण करने का आश्वासन प्रदान किया।

विद्वानों ने उनसे प्रश्न किया—"आपके गुरु और भगवान में कौन बड़ा है ?" सत्यकीर्ति ने उत्तर दिया—"मेरे गुरु ही मेरे लिए भगवान स्वरूप हैं, इसलिए भगवान बड़े होकर भी उनके साथ ही खड़े प्रतीत होते हैं।"

विद्वानों ने कहा—"ऐसा कैसे संभव है ?" राजा बोले—"सूर्य हमसे इतनी दूर होते हुए भी हमारी दृष्टि में समाहित हो जाते हैं, बिना आँखों के सूर्य का दर्शन संभव नहीं। भगवान भी, सूर्यदेव की तरह अपरिमित हैं, पर गुरुरूपी ज्ञानचक्षुओं से उनको दृष्टि में समेट पाना संभव होता है।"

विद्वानों को कहे का अर्थ समझ में आ गया।

अंतरराष्ट्रीय मंच पर प्रतिष्ठित हुआ विश्वविद्यालय

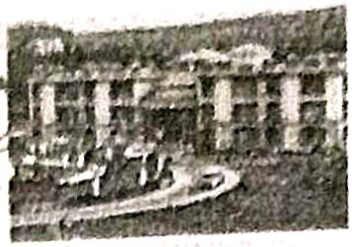

देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) के क्षेत्र में अपनी सक्रिय एवं मूल्याधारित पहल के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि आधुनिक विज्ञान और आध्यात्मिक दृष्टि परस्पर पूरक हो सकते हैं। यह दिशा पूज्य गुरुदेव के उस दूरदर्शी चिंतन से प्रेरित है, जिसमें उन्होंने विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय द्वारा मानवता के उज्ज्वल भविष्य का स्वप्न देखा था। उनका स्पष्ट संदेश था कि विज्ञान यदि मानवीय संवेदनाओं और नैतिक मूल्यों से जुड़ा हो, तो वह विश्व-कल्याण का सशक्त माध्यम बन सकता है।

इसी दृष्टि को आधार बनाते हुए विश्वविद्यालय एआई के क्षेत्र में सुरक्षित, उत्तरदायी और मानव-केंद्रित तकनीकी विकास पर बल दे रहा है। शोध, नीति-विमर्श और वैश्विक संवाद के माध्यम से देव संस्कृति विश्वविद्यालय यह प्रयास कर रहा है कि एआई केवल तकनीकी प्रगति का साधन न रहकर, मानवीय चेतना के उत्कर्ष और समाज के समग्र विकास का माध्यम बने। इसी क्रम में विगत दिनों भारत सरकार द्वारा आयोजित एआई इम्पैक्ट समिट 2026 का भव्य शुभारंभ हुआ।

इस वैश्विक शिखर सम्मेलन में विश्वभर के नीति-निर्माताओं, शिक्षाविदों, तकनीकी विशेषज्ञों, नवप्रवर्तकों एवं चिंतकों ने सहभागिता की। सम्मेलन का उद्देश्य एआई के तीव्र विस्तार के बीच उसके नैतिक, सामाजिक एवं वैश्विक प्रभावों पर गंभीर मंथन करना रहा। उद्घाटन दिवस पर आयोजित प्रमुख सत्र में ट्रस्ट एस अ ग्लोबल इम्पेरेटिव—हाउ टू ऑपरेशनलाईज सेफ फॉर आल विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा।

इस महत्त्वपूर्ण सत्र में प्रतिकुलपति जी समेत अंतरराष्ट्रीय स्तर के विशिष्ट विशेषज्ञों यथा यूनेस्को से गैब्रिएला रामोस, मेरीन कोलिन्स तथा ग्लोबएथिक्स की पाओला गल्वेस के साथ पैनल चर्चा में सम्मिलित हुए।

एआई इम्पैक्ट समिट कार्यक्रमों की शृंखला में एआई सेफ्टी कनेक्ट 2026 का भी आयोजन किया गया। प्रतिकुलपति जी समेत इस पैनल में डॉ० उर्वशी अनेजा, श्री ओसामा मंजर तथा प्रो० हेमंत भार्गव सम्मिलित थे; जबकि सत्र का संचालन डॉ० मार्क निट्ज़बर्ग द्वारा किया गया।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय, इंडिया एआई मिशन भारत सरकार तथा इंटर पार्लियामेंट्री यूनियन के संयुक्त तत्त्वावधान में एआई इम्पैक्ट समिट 2026 के अंतर्गत एआई फॉर डेमोक्रेसी-रीइमेजिनिंग गवर्नेंस इन दि एज ऑफ इंटेलिजेंस विषय पर एक भव्य एवं ऐतिहासिक अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रम सत्र का आयोजन भी किया गया।

लोकतंत्र और एआई के अंतर्संबंध पर केंद्रित यह विश्व का प्रथम एवं एकमात्र विशिष्ट कार्यक्रम रहा, जिसमें तकनीक और मानवीय मूल्यों के संतुलन पर गंभीर वैश्विक विमर्श हुआ। कार्यक्रम का शुभारंभ भारत के माननीय लोकसभा अध्यक्ष श्री ओम बिरला जी एवं आईपीयू के महासचिव की गरिमामयी उपस्थिति में हुआ। प्रारंभिक वक्तव्य में मैक्सिको की एआई नैतिकता विशेषज्ञ एवं ह्यूमएन

फाउंडेशन की अध्यक्षा हिमेना सोफिया ने क्रिटिकल चैलेंजेज इन दि एज ऑफ एआई विषय पर विस्तार से विचार रखे।

इसके उपरांत प्रतिकुलपति जी ने सत्र की संदर्भ रूपरेखा प्रस्तुत की। हंगरी संसद के माननीय उपाध्यक्ष लाओस ओमान ने एथिकल एआई फॉर स्ट्रेंथनिंग डेमोक्रेटिक इंस्टिट्यूशंस विषय पर मुख्य वक्तव्य दिया। 'हू प्रोग्राम्स डेमोक्रेसी व्हेन एआई एंटर्स गवर्नेंस' विषय पर इंटर पार्लियामेंट्री यूनियन के माननीय महासचिव मार्टिन चुन्गोंग ने अपना अतिथि वक्तव्य दिया। समापन चरण ग्लोबेथिक्स के कार्यकारी निदेशक डॉ० फादी दाऊ के साथ संपन्न हुआ।

कार्यक्रम के दौरान श्रोताओं के प्रश्नों पर विशेषज्ञों ने विस्तृत उत्तर दिए और लोकतंत्र की मजबूती में एआई की भूमिका पर सारगर्भित संवाद हुआ। कार्यक्रम के अंत में प्रतिकुलपति जी ने सभी विशिष्ट अतिथियों को प्रतीकचिह्न एवं युगसाहित्य भेंट कर सम्मानित किया। एआई विषयक कार्यक्रमों की इसी शृंखला में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में एआई फॉर संस्कृति विषय पर एक अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

यह कार्यक्रम देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं भारत सरकार की इंडिया एआई मिशन के संयुक्त तत्त्वावधान में संपन्न हुआ। मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. फादी दाऊ उपस्थित रहे, जबकि विशिष्ट अतिथि के रूप में डॉ. शिल्पा देसाई (सीईओ, एरोस इंटरनेशनल) ने अपने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम का एक प्रमुख आकर्षण देव संस्कृति विश्वविद्यालय और ग्लोबेथिक्स (जेनेवा) के मध्य हुए समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर रहा। इसके अतिरिक्त, एरोस इंटरनेशनल के साथ संस्कृति जीपीटी अथवा धर्म जीपीटी जैसे मूल्य-आधारित डिजिटल प्लेटफॉर्म विकसित करने हेतु एक संयुक्त कार्ययोजना भी प्रस्तुत की गई।

विगत दिनों विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय एकता शिविर का उद्घाटन हुआ। यह भारत सरकार के युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय के अंतर्गत राष्ट्रीय सेवा योजना द्वारा आयोजित किया गया जिसमें विभिन्न गतिविधियाँ संचालित की जानी थीं।

उद्घाटन समारोह में प्रतिकुलपति जी ने सभी विशिष्ट अतिथियों का स्वागत एवं अभिनंदन किया। इस अवसर पर उत्तराखंड सरकार में माननीय मंत्री श्रीमती रेखा आर्य जी, हरिद्वार के माननीय सांसद श्री त्रिवेंद्र सिंह रावत जी, राष्ट्रीय सेवा योजना क्षेत्रीय निदेशक तथा उत्तराखंड की राज्य एनएसएस अधिकारी विशिष्ट रूप से उपस्थित रहे।

मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरेऽपि वा।
अज्ञानहृदयग्रंथिनाशो मोक्ष इति स्मृतः॥

अर्थात मोक्ष किसी स्थान विशेष में निवास करने को नहीं कहते। न उसके लिए किसी नगर या लोक में जाना पड़ता है। हृदय का अंधकार समाप्त होते ही मनुष्य मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

विदित हो कि इस राष्ट्रीय शिविर में देश के विभिन्न राज्यों यथा कर्नाटक, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, ओडिशा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, अरुणाचल प्रदेश, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड से सैकड़ों स्वयंसेवक प्रतिभाग कर रहे थे।

शिविर के अंतर्गत विविध सांस्कृतिक, बौद्धिक एवं सामुदायिक गतिविधियों के माध्यम से युवाओं में नेतृत्व, सेवा-भावना एवं समन्वय की चेतना को प्रबल किया जाना निर्धारित था। ❑

संयमी-साधु-तपस्वी-ऋषि

संयमी-साधु-तपस्वी एवं ऋषि—भविष्य में ये ही जीवन-चेतना के विकास की चार अवस्थाएँ होंगी। भारतीय संस्कृति के पुरातन स्वरूप में इन्हीं को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास आश्रम के रूप में अपनाया गया था। आश्रम का अर्थ, आश्रयस्थल है। सामान्य भाषा में इसे पड़ाव भी कह सकते हैं।

इस तरह से ये जीवन-चेतना के विकास के चार पड़ाव हैं, जिनसे गुजरते हुए जीवन-चेतना अपने शिखर पर आरूढ़ होती है। इन्हें जीवन-विकास की चार कक्षाएँ भी कहा जा सकता है। इनकी जीवन-चेतना के विकास के लिए क्रमिक आवश्यकता है। इनमें से किसी का भी परिचय बाहरी वेश अथवा स्थान नहीं है। किसी मत अथवा पथ से भी इनका कोई मेल नहीं है। इनकी वास्तविकता आंतरिक विकास में है, अंतस् की स्थिति या अवस्था में है।

जीवन-चेतना के विकास के लिए किसी बाहरी वेश, स्थिति या स्थान को आसानी से अस्वीकार किया जा सकता है, किंतु आंतरिक स्थिति को नकारने या अस्वीकार करने पर जीवन विकास की गति या गतिशीलता अवरुद्ध हो जाती है। इसके लिए आवश्यक ऊर्जा में कमी हो जाती है।

तब ऐसी अवस्था में जीवन-चेतना की रहस्यमय विभूतियाँ उजागर नहीं होतीं। इसका अपनी उच्चतम कक्षा में पहुँच पाना असंभव बना रहता है। वर्तमान समय में न तो प्राचीन व्यवस्था रही है और न ये अवस्थाएँ देखने को मिलती हैं। जो देखने को मिलता है, उसकी कहानी बहुत करुण है। शरीर रोगी हो चला है, मन—भटकन से भरमाया है। जीवन की दशा विषादग्रस्त है। ज्ञानी सभी हैं, लेकिन ज्ञान किसी के भी पास नहीं है। उपदेश सभी के पास हैं, लेकिन आचरण किसी के पास नहीं बचा है। अपनी सर्वज्ञता के अभिमान में अपनी सुधि भी बिसरा बैठे हैं।

आसुरी अँधियारे की सघनता ने चहुँओर भ्रम फैला रखे हैं। सारी स्थिति, परिस्थिति, परिदृश्य व परिवेश का आकलन करके यही कहा जा सकता है कि वर्तमान युग—भ्रांति युग है। यही वजह है कि अनुभव प्रमाण न होकर, अनुमान प्रमाण बन गया है। जब मन अँधियारे से भरा हो, तो भला यह अनुमान और इनके आकलन कितने सही होंगे, यह स्वयं सोचा जा सकता है।

अशुद्धियों से भरे चित्त में, विकारों से भरे विचारों में, तमस् से—जड़ता से मूर्च्छित हो रही चेतना में सम्यक अनुभव होने की गुंजाइश कितनी बची होगी ?—यह स्वयं में बहुत बड़ा प्रश्न है। स्थिति में परिवर्तन के लिए मानवीय प्रयास की सही दिशा एवं दैवी हस्तक्षेप की अनिवार्यता अनुभव की जा रही है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव की शतवर्षीय सघन--साधना परिस्थिति में परिवर्तन के लिए दैवी हस्तक्षेप की व्यवस्था बनाती जा रही है। जहाँ तक सवाल मानवीय प्रयास की सही दिशा का है, तो स्वयं उन्होंने शरीर रहते विराट युगसाहित्य लिखकर यह व्यवस्था भी बना दी है।

जीवन की सभी भ्रांतियों के निरसन, निवारण, निराकरण के लिए इस युगसाहित्य का पठन-

पाठन, अध्ययन-अनुशीलन, विचार-विमर्श अवश्य किया जाना चाहिए। इसमें तर्क, तथ्य, प्रमाण होने के साथ नए युग की नई दृष्टि भी है। इसका अध्ययन हमें अनुभव देता है कि प्राचीन व्यवस्थाएँ व परंपराएँ, दैवी विधान व मानव विवेक के साँचे में ढलकर भविष्य में नया रूप लेंगी। तब ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास को संयमी, साधु, तपस्वी व ऋषि के नए रूप में स्वीकारा जाएगा। इन्हें आश्रम का आश्रय मिले-न-मिले, लेकिन इन कक्षाओं को उत्तीर्ण करके ही जीवन-चेतना के शिखर तक पहुँचना संभव है; यह सरल-सत्य सबको समझ में आ जाएगा।

यह सभी जानते हैं कि कार्य की क्रियाशीलता के लिए ऊर्जा अनिवार्य होती है, फिर वह चाहे चेतन जीवन हो या जड़ जगत्—ऊर्जा किसी कार्य की संपन्नता के लिए आवश्यक है। मानव जीवन का सत्य भी यही है। किसी भी भवन की उच्च अट्टालिकाएँ तभी स्थिर रह पाती हैं, जब उनकी नींव गहरी व सुदृढ़ हो। जीवन के साथ भी यही है। इसे अपने विकास की सभी अवस्थाओं के लिए व शिखर-अनुभव के लिए अधिक-से-अधिक ऊर्जा चाहिए। बात चेतना के विकास की हो रही है, तो इसके लिए ऊर्जा भी चेतन होगी। विद्युत, पेट्रोल की ऊर्जा नहीं—अध्यात्म ऊर्जा। जड़ ऊर्जा की जगह चेतन ऊर्जा।

इसी के लिए संयमी होने—संयम करने की जरूरत है। इसी से जीवन-भवन का सर्वोच्च शिखर तक पहुँचना, उसका स्थिर रह सकना संभव हो पाएगा। संयम का अर्थ है—ऊर्जा का संरक्षण, ऊर्जा का अर्जन। इंद्रिय, विचार, स्वाद व समय के संयम से संरक्षण के उद्देश्य तो पूरे हो जाते हैं, पर अर्जन के लिए विशेष प्रयास करने होते हैं। इसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक सभी आयामों पर प्रयास करना होता है।

जीवन की इस प्राथमिक अवस्था में अध्ययन, योग्यता, विशेषज्ञता, कला, कुशलता, शक्ति-सामर्थ्य—संयम के आधार पर ही मिलते हैं। समृद्धि व सफलता के द्वार भी इसी से खुलते हैं। संयम जितना अधिक सधेगा, समृद्धि व सफलता उतनी ही सघन होगी। अपनी सामर्थ्य भी उतनी ही प्रबल होगी। यह संयम ही प्राचीन युग का ब्रह्मचर्य है, जिससे असंभव को संभव करने की सामर्थ्य मिलती है।

इसके बाद दूसरी अवस्था व दूसरी कक्षा साधुता की है। इस साधुता में सरलता-सज्जनता, सद्भाव, सद्विचार व सत्कर्म जैसे अनेकों गुण समाये हैं। इस नई कक्षा में प्रवेश का अर्थ यह नहीं है कि पुरानी कक्षा की योग्यताएँ त्याग दी जाएँगी

ज्ञानी सभी हैं, लेकिन ज्ञान किसी के भी पास नहीं है। उपदेश सभी के पास हैं, लेकिन आचरण किसी के पास नहीं बचा है। अपनी सर्वज्ञता के अभिमान में अपनी सुधि भी बिसरा बैठे हैं।

अथवा भुला दी जाएँगी। सामान्य पढ़ाई में यह क्रम देखें, तो यह बात सहजता से समझ में आ जाएगी। हाईस्कूल से इंटरमीडिएट में पहुँचने पर हाईस्कूल की योग्यता को भुलाया नहीं जाता और न उसकी आवश्यकता कभी कम होती। बस, आगे की पढ़ाई से योग्यता के पुराने आयाम के साथ नए आयाम खुल जाते हैं।

साधुता के सद्गुणों के अर्जन के क्रम में संयम का महत्त्व कम नहीं होता। उसकी आवश्यकता यथावत् बनी रहती है। साधुता सद्गृहस्थ का जीवन है। संयम के साथ यह अधिक समर्थ होता है। इसकी सामर्थ्य वेश से नहीं, कर्म-कुशलता से प्रकट होती है। कर्मों की सामर्थ्य-अभिव्यक्त करने की यह अवधि

है। लोक में अपने जीवन की उपयोगिता एवं जीवन में लोक की उपयोगिता सिद्ध करने की यही अवधि है। कर्मों के झंझावात की इस अवधि में पहली कक्षा में सीखा गया संयम ही साधुता के सद्गुणों को न केवल बचाए रखता है, बल्कि इन्हें और अधिक परिमार्जित व प्रकाशित कर देता है।

तपस्वी के रूप में जीवन-चेतना के विकास की तीसरी कक्षा में सही प्रवेश—साधुता की दूसरी कक्षा एवं संयम की पहली कक्षा की सफलता के बाद ही हो पाता है। साधुता जितनी निभ सकी, तपस्या उतनी ही निभ पाती है। साधुता की अवस्था में अपनाए जाने वाले जप-ध्यान के रूप में अध्यात्म के दो चरण इसमें तीव्र होते हैं। इसी तरह इसमें विवेक-वैराग्य की तीव्रता भी बढ़ती है। यही प्राचीन काल के वानप्रस्थ की अवधि है।

प्राचीनकाल की यह परंपरा, वर्तमान युग में पूर्णतया लुप्त हो गई थी। परमपूज्य गुरुदेव ने इसे पुनर्जीवित किया। इसे नवजीवन प्रदान किया। तपस्वी जीवन की तपस्या—कर्म, संस्कारों के अनेक अवरोधों को समाप्त कर जीवन को अंतर्क्षेत्र के आंतरिक जीवन में प्रवेश देती है। तप के ताप से—कर्म की कठोरता को, संस्कारों की सबलता को गलाया जाता है। इसी के साथ जीवन की सभी आसक्तियों के सूत्र भी इस अवधि में कट जाते हैं। चित्त का भार हरण कर उसे निर्भार किया जाता है।

ऐसा होने पर ही ऋषि जीवन के द्वार खुलते हैं। ऋषि का अर्थ द्रष्टा होना है। जीवन की पहली तीन अवस्थाओं में हम दृश्य के दर्शन में उलझे रह कर दर्शक बने रहते थे, लेकिन इस अवस्था में हम दर्शक से द्रष्टा बनते हैं। तपस्वी जीवन के तप की यही उपलब्धि है। दर्शक और द्रष्टा होने में एक भारी अंतर है। दर्शक दृश्य में फँसता-उलझता है। उससे उसका वैचारिक व भावनात्मक तादात्म्य हो जाता है, लेकिन द्रष्टा होने पर तादात्म्य विसर्जन होता है। आसक्तियों की डोरें टूटने से यह स्थिति बनती है। दर्शक और द्रष्टा, दोनों ही देखते हैं। इनमें से दर्शक दृश्य से आसक्त होता है; जबकि द्रष्टा दृश्य से सर्वथा अनासक्त या साक्षी बना रहता है।

ऋषि अथवा द्रष्टा होने पर भी तीन चरण होते हैं। इसके पहले चरण में वह कर्मों, परिस्थितियों या घटनाक्रमों का द्रष्टा होता है। यह उसके ऋषि होने की अवस्था है। इसके दूसरे चरण में वह चित्त का द्रष्टा होता है। इस अवस्था में वह समस्त कर्मबीजों, संस्कारों एवं सभी जन्मों के सत्य को देखता है। उसके लिए चित्त ही दृश्य होता है, जिसे वह अनासक्ति या साक्षी भाव से अनुभव करता है। यह अवस्था उसके महर्षि होने की है।

किसी भी भवन की उच्च-अट्टालिकाएँ तभी स्थिर रह पाती हैं, जब उनकी नींव गहरी व सुदृढ़ हो। जीवन के साथ भी यही है। इसे अपने विकास की सभी अवस्थाओं के लिए व शिखर-अनुभव के लिए अधिक-से-अधिक ऊर्जा चाहिए। बात चेतना के विकास की हो रही है, तो इसके लिए ऊर्जा भी चेतन होगी।

इसके तीसरे चरण में वह अपने आत्मतत्त्व को देखता है और परब्रह्म परमात्मा के साथ एकत्व की अनुभूति करता है। द्रष्टा की अपने स्वरूप में यह स्थिति उसे ब्रह्मर्षि की योग्यता देती है। यह ऋषि जीवन ही संन्यास जीवन है; जिसमें क्रमिक रूप से हंस, परमहंस एवं अवधूत की तीन अवस्थाओं का अनुभव होता है। यही अनुभव ही ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि होने के अनुभव हैं। परिमार्जित व प्रकाशित होने की इन अवस्थाओं से कलाओं में जीवन-सौंदर्य प्रकट होगा। ❑

नवयुग का शंखनाद

नवयुग का प्रभात समीप है। अंधकारमय अवसाद का समय अब बीत चुका है और प्रकाश की स्वर्णिम किरणें क्षितिज पर उदित हो रही हैं। यह घड़ी केवल कल्पनाओं में डूबे रहने की नहीं, बल्कि अपने भीतर सोई हुई संभावनाओं को जाग्रत करने की है। गायत्री महाशक्ति का स्वरूप केवल मंत्रोच्चारण या कर्मकांडों तक सीमित नहीं है। वह तो वह दिव्य चेतना है, जो मनुष्य के भीतर सुप्त पड़ी हुई शक्तियों को जगाती है।

जब आत्मा की सामर्थ्य प्रकट होती है, तब व्यक्ति सीमाओं को लाँघकर असाधारण बन जाता है और अपने जीवन तथा समाज दोनों के उत्थान का साधन बनता है। आज की मानवता के सामने सबसे बड़ी आवश्यकता है—सच्चे विवेक की, प्रखर मन की और सुदृढ़ चरित्र की। जब यह त्रिवेणी जाग्रत होती है तो समूचा जीवन एक साधना, एक तप और एक सतत यज्ञ का रूप ले लेता है। यही नए युग का शंखनाद है।

युग-परिवर्तन का स्वरूप बाहरी परिस्थितियों तक सीमित नहीं है, यह अंत:करण की शुद्धि और सामाजिक चेतना के पुनर्जागरण से घटित होता है। जब व्यक्ति अपने भीतर के अंधकार को दूर कर लेता है, तभी जगत् में प्रकाश का संचार संभव होता है। मानव इतिहास इसका साक्षी रहा है कि जब भी समाज निराशा, असंतुलन और अव्यवस्था से ग्रसित हुआ है, तब युगपुरुष, प्रज्ञावतार और महान विभूतियाँ अवतरित होकर मानवता को नई दृष्टि, नई शक्ति और नई दिशा देती रही हैं।

आज के समय में गायत्री शक्तिपीठ इस महायज्ञ की धुरी हैं। यहाँ से केवल उपदेश ही नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला सिखाई जा रही है। यह वह प्रयोगशाला है, जहाँ आत्मनिर्माण और समाज-निर्माण की ज्योति निरंतर प्रस्फुटित हो रही है। गायत्री मंत्र केवल ध्वनि नहीं, बल्कि दिव्य ऊर्जा है—ऐसा महामंत्र जो मन, प्राण और चेतना का रूपांतरण करता है। जब यह ऊर्जा जन-जन में प्रवाहित होती है, तब असंख्य जीवनों में क्रांति आती है और राष्ट्र पुन: अपनी गौरवमयी परंपराओं के शिखर पर प्रतिष्ठित होता है।

आज का आह्वान स्पष्ट है—हम सबको अपने भीतर की सुप्त शक्तियों को जगाना है, अपने जीवन को आदर्श बनाना है और अपने समाज को सत्पथ की ओर ले जाना है। आत्मशक्ति का यह जागरण ही युग निर्माण की नींव है। यह केवल एक आंदोलन नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक क्रांति है।

जब प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर प्रज्ञा, शक्ति और करुणा को जगा लेगा, तब नए युग का सवेरा होगा—सत्य, सद्भाव और उज्ज्वल भविष्य का युग। समय निरंतर गतिमान है और इसी गति में परिवर्तन की नई लहरें उठती रहती हैं। सूर्य का उदय हर सुबह हमें यह संदेश देता है कि जीवन ठहराव का नाम नहीं है, बल्कि निरंतर नवीनीकरण का प्रतीक है।

ऋतुओं का आवागमन, दिन-रात का क्रम, जन्म-मरण की प्रक्रिया ये सब सिखाते हैं कि परिवर्तन ही सृष्टि का शाश्वत नियम है। इसी

व्यवस्था में जो मनुष्य अपने आप को ढाल लेता है, वही प्रगति की ओर अग्रसर होता है।

आज की परिस्थिति भी इसी सत्य का उद्घोष कर रही है। मानवता एक ऐसे मोड़ पर खड़ी है जहाँ उसे अपने भीतर से उठ खड़ा होना होगा। आत्मबल, विवेक और सृजनात्मकता की ऊर्जा से ही वह आने वाली चुनौतियों का सामना कर सकेगी। जो स्थिर हो गया, वह जड़ हो गया और जो जड़ हो गया, वह पतन की ओर बढ़ा।

अत: आवश्यक है कि हम सब अपनी चेतना को नई ऊर्जा दें और आत्मपरिवर्तन की इस साधना में स्वयं को समर्पित करें। मनुष्य का सच्चा उत्थान केवल बाहरी साधनों से नहीं होता, बल्कि भीतर की पवित्रता, उच्च सोच और श्रेष्ठ कर्म से होता है।

जब अंत:करण निर्मल होता है तो मनोभूमि में सद्विचारों की फसल लहलहाने लगती है। तब जीवन का प्रत्येक कार्य साधना बन जाता है और व्यक्ति स्वयं समाज के लिए प्रकाशस्तंभ का कार्य करता है। ऐसे ही चरित्रवान और उदात्त पुरुषार्थी लोग समाज और राष्ट्र की तकदीर बदलते हैं। आज आवश्यकता है कि हम अपने जीवन की प्राथमिकताओं पर पुनर्विचार करें।

क्या हम केवल व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं तक सीमित रहेंगे या युगधर्म निभाने के लिए अपने कर्तव्यों का साहसपूर्वक निर्वाह करेंगे? याद रखिए, युग-परिवर्तन केवल एक विचार नहीं, बल्कि कर्म का आह्वान है। हमें अपनी क्षुद्रताओं को त्यागना होगा, संकीर्णताओं को पीछे छोड़ना होगा और आत्मनिष्ठ होकर जन-जन तक प्रकाश का संचार करना होगा। यह युग हमसे त्याग और तपस्या की माँग कर रहा है।

समय चाहता है कि हम अपने भीतर छिपी दिव्यता को जगाएँ और उसे समाज के कल्याण में नियोजित करें। निस्संदेह चुनौतियाँ बड़ी हैं, परंतु उनका समाधान भी हमारी सामर्थ्य के भीतर ही है। यदि हम सब मिलकर संकल्प लें तो कोई भी शक्ति इस नवयुग के आगमन को रोक नहीं सकती।

आइए! हम सब इस महान युग-साधना में सहभागी बनें। अपने जीवन को आदर्श बनाकर समाज को सत्पथ पर अग्रसर करके और राष्ट्र को उसकी महान परंपराओं से जोड़कर हम वह परिवर्तन ला सकते हैं, जिसकी आज समस्त मानवता प्रतीक्षा कर रही है।

यही हमारा धर्म, यही कर्त्तव्य है और यही जीवन का सर्वोच्च पुरुषार्थ है। ❑

"संयम तो एक निषेधात्मक गुण हुआ भगवन्!"—शिष्यों ने महर्षि पतंजलि से प्रश्न किया।

पतंजलि बोले—"नहीं वत्स! संयम निषेधात्मक नहीं, विधेयात्मक गुण है। इसका एक पक्ष जहाँ अनावश्यक अपव्यय को रोकता है, वहीं दूसरी ओर उसे सृजनात्मक कार्यों हेतु नियोजित करना भी है। एक पूर्वार्द्ध है, दूसरा उत्तरार्द्ध। निरोध न हो व सुनियोजन के प्रयास चलें तो व्यर्थ है। निरोध हो व नियोजन कहीं न हो तो वह संयम भी व्यर्थ है।"

शिष्यों की समस्या का समाधान हो गया।

युवा क्रांति का बिगुल बज गया

युवा क्रांति का बिगुल बज गया, होना है संग्राम।
जाग उठो हे युवा शक्ति, अब चलना अविराम॥
युवा क्रांति का बिगुल बज गया, होना है संग्राम॥

शीश काटने अनाचार का, आए परशुराम।
विश्वामित्र ऋषि ने ही तो, जगा दिए थे राम॥
तरुणाई जब-जब जागी, तब हुआ महासंग्राम।
युवा क्रांति का बिगुल बज गया, होना है संग्राम॥

असुर शक्ति ने छद्म वेश में, सबको खूब सताया।
दुष्प्रवृत्ति का अब समाज से, होगा पूर्ण सफाया॥
युगऋषि का संदेश सुनाने, चल युवा अविराम।
युवा क्रांति का बिगुल बज गया, होना है संग्राम॥

जागो युवा शक्तियों, तोड़ो लोभ, मोह की माया।
युग नायक, युग सैनिक बनने का यह अवसर आया॥
युगों-युगों तक याद रहे, कर जाओ वह काम।
युवा क्रांति का बिगुल बज गया, होना है संग्राम॥

स्वस्थ, सभ्य शालीन युवा हो, नैतिक जिम्मेदार।
व्यसनमुक्त, संस्कारयुक्त हों, गाँव-गाँव घर बार॥
युवा क्रांति का नववसंत, ले आया पैगाम।
युवा क्रांति का बिगुल बज गया, होना है संग्राम॥

—मंगल गढ़वाल

युगऋषि वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
के
समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

खंड-17

प्राणशक्ति: एक दिव्य विभूति

समस्त संसार में वायु, आकाश, प्रकाश, ईथर, प्लाज्मा की सजीव प्राणशक्ति समायी हुई है। प्राणशक्ति एक बहुमूल्य विभूति है। यह विभूति सबके शरीर में पाँच प्राण, पंचदेवों के रूप में विद्यमान है। इन्हें जानने के लिए हम जानें—

* प्राणशक्ति का प्रचंड विद्युत-प्रवाह।
* प्राणविद्युत की चमत्कारी कार्यक्षमता।
* पाँच प्राणों के पाँच देव कौन हैं ?
* प्राणवान बनने की प्रक्रिया।
* प्राणतत्त्व एवं प्राण विद्युत।
* प्राणशक्ति से दिव्यशक्तियों का उद्भव।
* प्राणशक्ति की अतींद्रिय क्षमता।

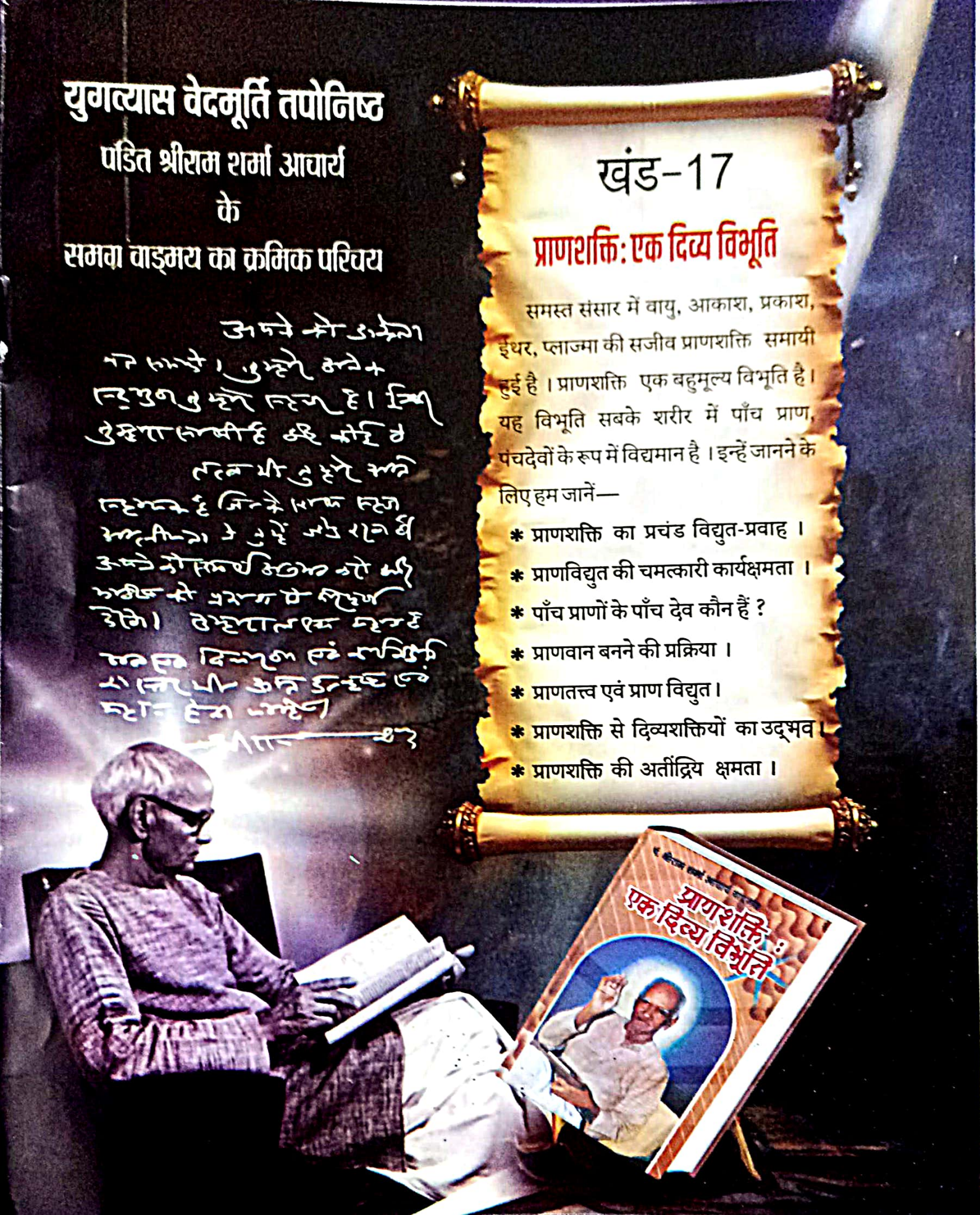

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01 - 4 - 2026
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

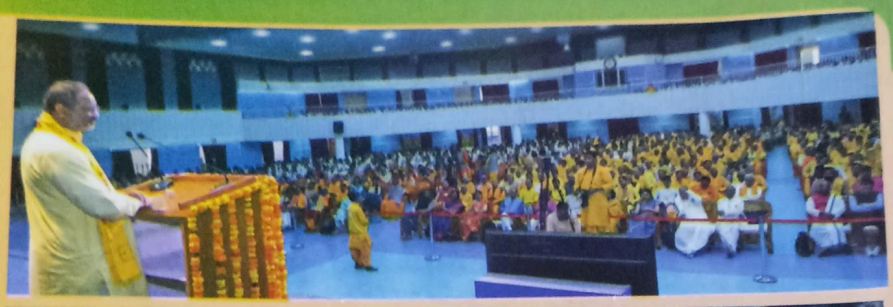

देव संस्कृति विश्वविद्यालय World Association of Hindu Academicians (WAHA) तथा Indian Council of Social Science Research (ICSSR) के सहयोग से भारतीय ज्ञान परंपरा और 'विकसित भारत' के विमर्श को समर्पित अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संगोष्ठियों का शुभारंभ देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शांतिकुंज–हरिद्वार में एक महत्त्वपूर्ण अकादमिक पहल के अंतर्गत अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संगोष्ठियों तथा कार्यशाला शृंखला का भव्य शुभारंभ हुआ।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक–मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281 003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ई-मेल–akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org